वर्ष - 19 अंक - 3 अक्टूबर से दिसम्बर 2021 मूल्य 20/-

रघुकुल श्री

RNI No.: MPHIN/2002/07269

सामाजिक पत्रिका

कहाँ तुम चले गए.....

एक अश्रुपूरित श्रद्धांजलि

हमारे प्रिय और परम् स्नेही अविभाज्य मित्र श्री शंभू सिंह रघुवंशी का दिनांक 26 अक्टूबर 2021 को देवलोक गमन हो गया। उनकी प्रथम पदस्थापना वर्ष 1986 में भोपाल जिला एवं सत्र न्यायालय में व्यवहार न्यायाधीश के पद पर हुई थी। तब से यानी सैतीस वर्ष से हमारे संबंध मात्र स्वजातीय बंधुत्व और मित्रतावत् न रहकर सगे भ्राता तथा निजी परिवारजन की तरह रहे हैं। उनके साथ बिताए गए सौहाद्रपूर्ण एवं खुशहाल कालखंड अभी भी हमारे स्मृति पटल पर उमड़–घुमड़ रहे हैं। उनके साथ हम लोगों की परिवार एवं छोटे–छोटे बच्चों सहित की गई देशभर की धार्मिक यात्राएँ इस प्रकार परिदृश्य पर आ रही हैं, जैसे अभी कुछ समय पहले की ही बात हो। प्रत्येक दुःख–सुख में हमारा और उनका साथ रहा है और बच्चों की पढ़ाई, वैवाहिक संबंध से लेकर जीवन के प्रत्येक महत्वपूर्ण कार्यों में परस्पर विचारों का आदान–प्रदान होता रहा है।

मूलतः गंजबासौदा (फतेहपुर) में जन्मे श्री शंभु सिंह के भरे–पूरे परिवार में उनके ज्येष्ठ भ्राता श्री प्रयाग सिंह, उनकी धर्मपत्नी श्रीमती गायत्री देवी एवं उनके पुत्र चि. संदीप व चि. संकल्प एवं पुत्री सौ. अर्चना तथा अन्य समस्त परिजनों पर अचानक आई इस आपदा के अवसर पर हम उसमें सहभागी है एवं ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि वह शोक संतप्त परिवार को इस महान दुःख को सहन करने की शक्ति प्रदान करें तथा दिवंगत आत्मा को शांति प्रदान करें।

श्री शंभू सिंह जी अत्यंत न्यायप्रिय, ईमानदार, कर्मठ तथा प्रगतिशील रहे हैं। उनकी मिलनसारिता तथा विनोदपूर्ण व्यवहार हृदयस्पर्शी होता था। भ्राता सम मित्र के इस प्रकार अकस्मात चले जाने से हम लोगों की व्यक्तिगत क्षति तो हुई ही है, साथ ही रघुवंशी समाज का हृदय भी द्रवित है। उनके इस प्रकार हमें छोड़कर चले जाने के बावजूद हमारा मन यह मानने को तैयार नहीं हो पा रहा है कि वे अब हमारे बीच नहीं रहे तथा अब हमें कभी मिल भी नहीं पायेंगे। हमारी निगाहें उन्हे बार–बार ढूँढ रही है और मन कह रहा है – कहाँ तुम चले गए.....

शोक संतप्त....

शिववरण सिंह रघुवंशी

उमाशंकर रघुवंशी

पंजीयन क्र. 8950/2001

अखिल भारतीय रघुवंशी (क्षत्रिय) महासभा

"रघुकुल" समाज भवन, प्लाट नं. 1, जवाहर चौक, टी.टी. नगर, भोपाल

"रघुकुल" रघुवंशी समाज भवन, जवाहर चौक, टी.टी. नगर, भोपाल में भू-तल पर एक स्टेज सहित हॉल तथा प्रथम तल पर 6 कमरे, अटैच लेट-बाथ की सुविधा उपलब्ध है, साथ ही रसोई घर की सुविधा भी उपलब्ध है।

उक्त सर्व-सुविधायुक्त भवन वैवाहिक एवं अन्य कार्यक्रमों हेतु किराये पर उपलब्ध है। उक्त भवन का किराया रूपये 15,000/- प्रतिदिन है। इसके अतिरिक्त विद्युत व्यय एवं साफ-सफाई का व्यय पृथक से देय होगा। इच्छुक पक्षकार अग्रिम बुकिंग कराकर सुविधा का लाभ उठायें।

शिवचरण सिंह रघुवंशी
कोषाध्यक्ष
मो. 9425006655

उमाशंकर रघुवंशी
महासचिव
मो. 9425005454

KAMLA NEHRU HR. SEC. SCHOOL
SUNSHINE KINDERGARTEN

Imparting Education Building Lives • Blossoming Hearts Developing Minds

CBSE Affiliated

ISO 9001:2015 Certified School

- Interactive Digital White Board Technology Equipped Classrooms
- Multimedia Classrooms with TeachNext & LearnNext
- Interactive English Language Lab & Maths Lab
- School Band, NCC, Bharat Scout & Guide and Red Cross Unit
- Quality & Comprehensive Education at Affordable Fees

शिवचरण सिंह रघुवंशी

संस्थापक एवं सचिव
कमला नगर शिक्षण संस्था
कमला नेहरू हा.से. स्कूल
कमला नेहरू महाविद्यालय

अध्यक्ष
श्री राम मंदिर, श्री मनकामेश्वर
हनुमान मंदिर ट्रस्ट

उपाध्यक्ष
प्रादेशिक शिक्षा महाविद्यालय प्रबन्धन संघ
(मध्यप्रदेश)

कोषाध्यक्ष
अखिल भारतीय रघुवंशी (क्षत्रिय) महासभा

KAMLA NEHRU MAHAVIDYALAYA
(B.Ed. College)

[Approved by the National Council for Teacher Education & M.P. Govt.]
(Affiliated to Barkatullah University, Bhopal)

Ph. : 0755-4244754 E-mail : knmahavidyalaya@yahoo.co.in Website : kamlanehru-college.org

Kamla Nagar, Kotra Sultanabad, Bhopal. Ph. : 2762130, 4244355
E-mail : kamla.nehru.school@gmail.com Website : kamlanehruschool.in

RNI.NO.MPHIN/2002/07269

रघुकलश

त्रैमासिक सामाजिक पत्रिका

वर्ष- 19 | अंक- 3 | अक्टूबर से दिसम्बर 2021 | मूल्य-20 रुपये

संपादक की कलम से....

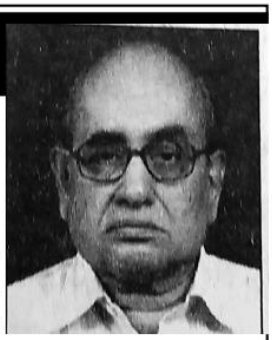

आरक्षण को मांग का लकर लामबद्ध हाता रघुवंशो समाज

लम्बे समय से मध्यप्रदेश में रघुवंशी समाज को अन्य पिछड़े वर्गों की सूची में शामिल कर आरक्षण का लाभ देने की मांग की जाती रही है। तत्कालीन मुख्यमंत्री अर्जुन सिंह ने रामजी महाजन आयोग का गठन किया था, उस समय रघुवंशी समाज के प्रतिष्ठित लोगों ने जिनमें उमाशंकर रघुवंशी, कल्याण सिंह रघुवंशी तथा स्व. रमेश चौधरी ने काफी प्रयास किए और एक पूरा सामाजिक सर्वे कर आयोग को सौंपा था। उस समय तत्कालीन विधायक द्वय हजारीलाल रघुवंशी एवं देवेंद्र सिंह भी इस बात के लिए प्रयत्नशील थे कि रघुवंशी समाज को आरक्षण का लाभ मिलना चाहिए। लेकिन उस दौरान समाज के ही कुछ सम्पन्न एवं प्रतिष्ठित लोगों का दबाव आया कि रघुवंशी समाज को पिछड़े वर्ग में शामिल न किया जाए। इसलिए उस समय जबकि सारी परिस्थितियां अनुकूल थीं, रघुवंशी समाज को आरक्षण का लाभ नहीं मिल पाया। अखिल भारतीय रघुवंशी क्षत्रियः महासभा ने भी समय–समय पर इस दिशा में प्रयास आरम्भ किए तथा मुख्यमंत्रियों को ज्ञापन भी सौंपे। अब फिर से रघुवंशी समाज में पिछड़ा वर्ग के शामिल होने के लिए समाज लगभग लामबद्ध हो रहा है और जगह–जगह प्रदर्शन कर मुख्यमंत्री शिव. राज सिंह चौहान के नाम ज्ञापन सौंपे जा रहे हैं। सभी सामाजिक बंधुओं से अपेक्षा है कि वह एकजुट होकर इस अभियान को गति दें ताकि सरकार रघुवंशी समाज को पिछड़ा वर्ग की सूची में शामिल करे। रघुवंशी समाज के लिए यह एक बेहद दुखद समाचार रहा कि हमारे समाज के प्रतिष्ठित व्यक्तित्व के धनी तथा सेवानिवृत्त जिला एवं सत्र न्यायाधीश शम्भू सिंह रघुवंशी का आकस्मिक निधन हृदयगति रुक जाने से हो गया, इससे पूरे समाज में शोक की लहर फैल गई। उनके योगदान को समाज भुला नहीं सकता क्योंकि सामाजिक गतिविधियों में भी वे बढ़चढ़ कर हिस्सा लेते थे। रघुकलश परिवार को भी इससे व्यक्तिगत क्षति हुई है क्योंकि उसमें भी वे अपनी साहित्यिक कृतियों का प्रकाशित करने के लिए हमें उपलब्ध कराकर सहयोग करते थे। समस्त रघुकलश परिवार की ओर से उन्हें विनम्र श्रद्धांजलि।

— अरूण पटल

कविता

दर सब संताप हा.....

नाथ दो निर्मल गति अब, मेरी विनय निष्पाप हो।
पीड़ितजनों पर आप, करते दया चुप चाप हो।।
आनंद रस बरसे प्रभु, जग में न कष्ट विलाप हो।
दे दो दरस बस एक पल, तो दूर सब संतोप हो।।

हृदय मंदिर में विराजे, अविनाशी केवल आप हो।
प्राणी जगत के पुत्र है, प्रभु आप ही मॉ बाप हो।।
कर दो कृपा नाथ, शमन सबके पाप हो।

दे दो दरस बस एक पल, तो दूर सब संताप हो।।
प्रभु अंतर में बसे हो, हर श्वास का तुम जाप हो।
विलग कैसे आपसे हों, जीवन धनुष की चाप हो।।
बल हमें दो पुण्यही हो, किंचित न हमसे पाप हो।
दे दो दरस बस एक पल, तो दूर सब संताप हो।।

वरदान दो हर जीव को, नित शमन सबके श्राप हो।
सुख के सागर को सभी के, हरते सभी परिताप हो।।
तो करुणा करो संसार पर, अब नष्ट तीनों ताप हो।
दे दो दरस बस एक पल, तो दूर सब संताप हो।।

—रघुनंदन शर्मा

श्री राम का अवतरण

–सनातन कुमार वाजपयी

स्वर्गोपम अयोध्या की परम सुपावन भूमि में श्री राम का मानव रुप में अवतरण संसार की एक महानतम घटना है। जो प्रभु अनन्त हैं, अव्यय हैं, अरुप हैं, सच्चिदानंद घन है। जगत का आधार हैं, अलख हैं, निरंजन हैं, सर्वत्र परिव्याप्त होते हुए भी सबसे निर्लिप्त हैं। जगत का अधिष्ठान हैं और वही सब रुपों में अध्यस्त हैं। जिससे सूर्य, चन्द्रमा, तारे और अग्नि प्रकाशित हैं, सिसे यह सारा जगत प्रकाशित होता है यथा––

जगत पकाश्य पकासक राम।
मायाधीश ज्ञान गुण गाम।।

जिससे सारा जगत प्रकाशित होता है। जो सबका प्रकाशक है। जिससे एक बूंद शक्ति पाकर यह पूरा संसार शक्तिमान बना है। जिसके भू विलास मात्र से अनेक ब्रह्माण्डों का उद्भव, प्रलय हो सकता है। जो गुणातीत है। प्रकृति से परे है। किन्तु सभी गुणों से सम्पन्न है। ऐसे प्रभु प्रकृति को स्वीकार करे। किसी को अपनी मॉ बनाकर उसकी गोद में खेलें। उसे वात्सल्य से सराबोर कर दें और किसी को अपना पिता बनाकर उसे परमानन्द के रस से निमग्न कर दें। बाल साथियों के साथ तरह–तरह की बाल कीडाएं करें। विवाह रचाकर सभी लोगों को आनन्द के सागर में डुबा दें। क्या इससे अधिक आश्चर्यजनक घटना संसार में अन्य है? जिसका रुप नहीं। रंग नहीं। वह प्रभु साकार होकर सबके समक्ष उपस्थित होकर विविध लीलायें करें। ठुमुक–ठुमुक कर आंगन में दौड़ लगायें। जिसकी पैंजनियों की रुनझुन ध्वनि सुनकर देवगण भी अपने काम–धाम भूलकर अपने–अपने विमानों पर विराजमान होकर प्रभु की बाल लीलायें देखकर आनंद में विभोर हो जायें और प्रभु पर दिव्य पुष्पों की वर्षा करने के लिए आतुर हो जायें। ऐसा क्यों? वह यह सब क्यों करता है?

ऐसा इसलिए कि वह परमात्मा विराट होते हुए भी अपने भक्तों के अधीन है। उसकी खुली घोषणा है कि ''जन कहॅ कछु अदेय जहिं मोरे।'' यह प्रभु परम दयालु हैं। कृपा का सागर है, शरणागत वत्सल है। दीनबन्धु हैं। उसका कथन है कि 'अहम् भक्त पराधीनों। तभी तो नील सरोरुह नीलमणि, नील नीरधर श्याम।'

स्वरुप को देखकर मनु हाराज के मन को वह रुप इतना अधिक भा गया कि उनका देहाध्यास समाप्त हो गया। वे एकटक उस रुप माधुरी का पान किये जा रहे हैं। मन तृप्त ही नहीं हो पा रहा है। गोस्वामी तुलसीदासजी ने उस मधुर रुप की एक अत्यन्त मनोरम झांकी प्रस्तुत की है, देखिये–

सरद मयंक वदन छबि सींवा।
चारु कपोल चिबुक दर ग्रीवा।।
अधर अरुन रद सुन्दर नासा।
विधु कर निकर विनिंदक हासा।।
नव अंबुज अंबक छवि नीकी।
चितवनि ललित भॉवती जी की।
भ्रकुटि मनोज चाप छवि हारी।
तिलक ललाट पटल दुतिकारी।।
उर श्रीवत्स रुचिर वनमाला।

पदिक हार भूषन मनिजाला।।
केहरि कंधर चारु जनेउ।
बाहु विभूषन सुन्दर तेउ।।
करि कर सरिस सुभग भुजदंडा।
कटि निषंग कर सर कोदंडा।।

तड़ित विर्निदक पीत पट, उदर रेख वन तिनि।
नाभि मनोहर लेति जनु, जमुन भँवर छवि छीनि।।

ऐसा है उन प्रभु का स्वरुप। जिसमें ऋषि मुनियों के मन रुपी मधुप सदा निरंतर वास करते हैं। ऐसे छवि के समुद्र प्रभु राम के रुप में उनका मन अटक कर ही रह गया। एकटक प्रभु की ओर देखे रहे हैं। पलकों ने झपकना ही बन्द कर दिया है।

हरष बिबस तन दसा भुलानी, परे दंड दव महि पद पानी।।

ऐसे स्वरुप को देखकर कौन ऐसा अभागा होगा जो उसे देखना न चाहेगा। फिर महाराज मनु तो अत्यन्त तपस्वी एवं सुकृती थे। प्रभु ने उनके सिर पर हाथ रखकर उन्हें आश्वस्त करते हुए कहा–

बोले कृपानिधान पुनि, अति प्रसन्न मोहिं जानि।
मॉगहुँ वर जोइ भाव मन, महादानि अनुमानि।।

जिसे साकार परमात्मा स्वयं लिम गये हों। क्या वह उस परमात्मा से इस संसार की याचना करें? संसार तो अपने आप प्राप्त है। मनु महाराज को वह रुप ऐसा भा गया कि उसने परमात्मा को ही पुत्ररुप में मॉग लिया, यथा–

दानि सिरोमणि कृपानिधि, नथ कहहुँ सतिभाउ।
चाहउँ तुम्हरि समान सुत, प्रभु सन कवचन दुराउ।।

महाराज मनु की बात सुनकर पहले तो प्रहु असमंजस में पड़ गये। मेरे समान तो अकेला मैं ही हूं। फिर महाराज मनु के गूढ़ रहस्य को समझ गये। महाराज मनु घुमा फिरा कर मुझे अपने प्रेम के वशीभूत होकर पुत्र रुप में चाहते हैं। सो कह दिया–

आप सरिस खोजउ कहँ जाई, नृप तब तनय होव मैं आई।

अनेक कारण थे कि परमात्मा राम को मानव रुप में साकार लीला करने के लिए संसार में आना ही था। रावण महान तपस्वी था। उसने ब्रह्मा से मनुष्य या वानर रुप मं अपनी मृत्यु की कामना की थी। श्री राम को ब्रह्मा के वचनों को पूरा करना था। दैत्यों के अत्याचार से पृथ्वी त्राहि त्राहि कर रही थी। देवता, सुर, मुनि, गंधर्व, पृथ्वी, रुपा गौ सभी ने प्रार्थना करके परमात्मा से इस दुख से त्राण चाहा था। देवर्षि नारद मुनि से भगवान शापित थे। इस तरह राम जन्म के अनेक कारण थे यथा––

राम जनम हेतु अनेका, परम विचित्र एक तें एका।

महाराज मनु को दिया हुआ भगवान का वरदान तो प्रधान कारण था ही। सो वही मनु महाराज आगामी जन्म में महाराज दशरथ एवं महारानी शतरुपा ही महारानी कौशल्या के रुप में अवतरित होते हैं। महाराज दशरथ की तीन रानियां थीं। कौशल्या, सुमित्रा एवं कैकेयी। उनका चौथापन आ गया था फिर भी अभी तक वे निसंतान थे। गुरु वशिष्ठ के शुभाशीष एवं पुत्रेष्टि यज्ञ रहे थे। कब आयेगा। वह शुभ मुहूर्त क्योंकि गुरु वशिष्ठ ने कहा था कि–

धरहु धर होइहहि तुत चारी, त्रिभुवन विदित भगत भय हारी।

अन्त में वह मुहूर्त आ ही गया। मधुमास की शुक्लपक्ष की नवमी तिथि। भौमवार का दिन। भगवान को अतिप्रिय अभिजित नक्षत्र। मध्य दिवस का सुअवसर। यों तो सभी शुभ नक्षत्र परमात्मा राम के जन्मोत्सव में उपस्थित होकर अपने आपको धन्य करना चाहते थे। सो सभी एक साथ उपस्थित हो गये।

जा दिन से हरि गर्भहि आये, सकल लोक सुख संपति छाये।
मंदिर महँ सब राजहिं रानी, सोभा सील तेज की खानी।
सुख जुत कछुक काल चलि गयउ, जेहित प्रभु प्रगट सो अवसर भयऊ।
जोग लगन ग्रहवार तिथि, सकल भये अनुकूल।
चर अरु अचर हर्ष जुत, राम जनमसुख मूल।।

और भी––

नौमी तिथि मधु मास पुनीता, सुकुल पक्ष अभिजित हरिप्रीता।
भव्य दिवस अति सीत न घामा, पावन काल लोक विश्रामा।
सीतल मंद सुरभि बह बाऊ, हरषित सुर संतन मन चाऊ।
बन कुसुमित गिरिमन मनिआरा, सवहि सकल सरिताअमृत धारा।
सो अवसर विरंचि जब जाना, चले सकल सुर साजि विमाना।
गगन विमल संकुल सुर जूथा, गावहिं गुन गंधर्व बरुथा।
बरषहिं सुमन सुअंजलि साजी, गहगहि गगन दुंदुभी बाजी।
अस्तुति करहिं नाम मुनि देवा, बहुविधि लावहिं निज–निज सेवा।
सुर समूह विनी करि, पहुंचे निज निज धाम,
जगनिवास प्रभु प्रगटे, अखिल लोक विश्राम।

प्रभु श्रीराम तो समस्त सृष्टि के हैं। सब उनके अपने हैं। समूची प्रकृति आनन्द में निमग्न है। त्रिविध समीरण प्रवाहित हो रहा है। वन के पेड़–पौधे और लतायें हरे भरे हो गये हैं। उनमें रंग बिरंगे सुमन खिले हुए हैं जो अपनी मधुरिम सुरभि से सभी को आनंद प्रदान कर रहे हैं। पर्वत की खानें सबको जी–भर मणियां लुटा रही हैं। सभी सरिताओं में अमृत जैसा सुशीतल जल प्रवाहित हो रहा है।

प्रभु श्री राम का अवतरण तो आनन्द का प्रतीक है। उनका मानव रुप में धरा धाम में अवतरण हो और प्रकृति अपने आपक. ो उनकी सेवा से वंचित कर ले। क्या ऐसा कभी संभव है? आज समूची प्रकृति ही आनन्द में मग्न होकर अपने सभी वैभव को लुटा देना चाहती है। महाराज दशरथ के हर्ष का तो ठिकाना

ही नहीं है। राम जन्म का प्रसंग सुनते ही उनका मन तो ब्रह्मानंद में लय हो गया। तन मन की सुधि ही नहीं रही। अब वहां जगत के व्यवहार कहां? किन्तु धीरे–धीरे उनकी चेतना लौटी। ब्रह्मानंद से बाहर आये एवं परमानन्द के सागर में निमग्न हो गये। लोगों से कहा–

वजाबहु बाजा। अरे महान आनन्द का अवसर है। खूब बाजे–बाजे बजाओ। जी भर आनंद मनाओ। अयोध्या के समस्त नर नारी, बाल, वृद्ध सभी महाराज दशरथ के राजमहल के द्वार पर पहुंच गये। सभी आनंद में निमग्न हैं। किसी को भी अपनी देह की सुधि बुधि नही है। उस समय अयोध्या में इतना आनंद था कि शेष और शारदा भी उसका वर्धन करने में असमर्थ थे। यथा–

वह सुख संपति समय समाजा, कहि न सकइ सारद अहिराजा।
अवधपुरी सोहहि इहि भांती, प्रभुहि मिलन आई जनु राती।
अगर धूप बहु जनु अंधियारी, उड़इ अबीर मनहुँ अरुनारी।
देखिभानु जनु मन सकुचानी, तदपि बनी सन्ध्या अनुमानी
मंदिर मनि समूह जनुतारा, नृप गृह कलस सो इंदु उदारा।
भवन वेद धुनि अति मृदु बानी, जनु खम मुखर समयँ जनु सानी।

यह था श्री रामचन्द्र के जन्म के सुअवसर का आनंद। इस आनंद को देखकर सूर्य भगवान भी अपनी गति भूल गये। उनका रथ स्तंभित हो गया। एक माह तक रथ रोककर भगवान सूर्य अयोध्या के आनंद में डूबे रहे। सोचें हम तनिक कि वह कैसा अपूर्व आनंद रहा होगा? किन्तु सब लोग इतने अधिक आनंद में डूबे थे कि उनको इस बात का आभास तक नहीं हुआ। कोई भी इस मर्म को नहीं समझ सका। यथा–

मास दिवस का दिवस भा, मरम न जानइ कोय।
रथ समेत रवि थोकउ, निशा कवन विधि होय ।।

महाराज दशरथ को श्री राम रुपी मणि प्राप्त हो गयी थी। अब वे घर की सभी भौतिक वस्तुओं को जी खोलकर लुटा रहे थे। रथ, हाथी, घोड़ा, रुपये, पैसे, मणियां, वस्त्र आभूषण सभी कुछ खुले हाथों नगरवासियों, जरुरतमंदों, सेवकों और अब भिखारियां को उलीच रहे थे। किन्तु आश्चर्य यह था उस समय जो भी जिस वस्तु को पाता वह भी दूसरों को उन्हें लुटा देता। तुलसीदासजी के श्सब्दों में देखिये–

तेहि अवसर जो जहिर विधि आवा, दीन्ह भूप जो जेहि मन भावा। गजरथ तुरम हेम गो हीरा, दीन्हें नृप नाना विधि चीरा।

सर्वस दान दीन्ह सबकाहू, जेहि पाबा राखा नहिं ताहू।

यह था श्री राम जन्म का उछाह। आनंद का महान पर्व। जो प्रभु सबका परमपिता है। माया जिसकी सहचरी है। आज कौशल्या मॉ का हितकारी वे ही राम अयोध्या की गलियों में बालक रुप में विचरण कर अयोध्यावासियों को आनंद प्रदान करते हैं। कभी अपनी बात टोली को लेकर सरयू के फूल में खेल रचाते हैं तो कभी मृगया के लिये वन विचरण करने जाते हैं ''जिन वीथिन विहरि सब भाई। सुखी होहिं सब लोग लुगाई।'' उनके सभी काम अयोध्यावासियों को आनंद प्रदान करने वाले हैं। जब कभी भगवान शंकर अपने परम शिष्य कागभुसुण्डि के साथ उनकी बाल लीलाओं का आनंद प्राप्त करने के लिये ज्योतिषी वेष धारण कर अयोध्या में आ धमकते हैं। भगवान तो प्रेम के भूखे हैं। भक्त जब उन्हें अतिशय प्रेम से पुकारता है। तब वे दौड़े चले आते हैं। जीवों के कल्याण के लिए उन्हें छोटा सा छोटा रुप धारण करने में भी किंचित संक. ोच नहीं होता है। वे सूकर, मत्स्य, कच्छप, नरसिंह आदि सभी रुपों को धरने में पूर्ण समर्थ हैं। ऐसे निर्गुण, निस्पृह, अव्यय, जगत के अधिष्ठान, सर्वरुप एवं व्याप्त परमात्मा मॉ कौशल्या की गोद में तरह तरह की बाल लीलायें कर उन्हें आनंद कर रहे हैं। तुलसीदास जी कहते हैं––

व्यापक ब्रह्म निरंजन, निर्गुन विगत विनोद।
सो अज प्रेम भगति बश, कौशल्या के गोद।

और

विप्र धेनु सर सन्त हित, लीन्ह मनुज अवतार।
निज इच्छा निर्मित तनु माया गुन गो पार।
व्यापक अकल अलीह अनीह अज, निर्गुन नाम न रुप।

भगत हेतु नाना विधि, करत चरित्र अनूप।
निज इच्छा निर्मित तनु माया मनु गो पार।
व्यापक अकल अनीह अज, निर्गुन नाम न रुप।
भगत हेतु नाना विधि, करत चरित्र अनूप।
सुख संदोह मोह पर, ग्यान गिरा गोतीत।
दंपति परम प्रेम वस, कर सिसु चरित पुनीत।

यह है श्री राम के श्री अयोध्या पुरी में अवतरण की मानव लीला। इसके अतिरिक्त उनके अवतरण का मुख्य कारण तो अधर्म का विनाश और धर्म की संस्थापना है ही। ये सब उनकी लीला के ही अंग हैं। कहा भी गया है कि–

जब जब होइ धर्म की हानी।
बाढ़हि असुर अधम अभिमानी।
तब तब धरि प्रभु बिबिध सरीरा।
हरहिं कृपा निधि सज्जन पीरा।

प्रभु राम का अवतरण जन रंजन एवं पृथ्वी के भार को उतारने के लिये होता है। आइये हम आप भी ऐसे कृपालु, दीन वत्सल, भक्तों के प्रेमी शरणागत के महान रक्षक भगवान श्री राम के चरणों से जुड़कर अपने जीवन को सार्थक करें। इसी में हमारा कल्याण है और जीवन की सार्थकता है।

वाल्मीकि भये ब्रह्म समाना

–हरराम वाजपयी

आदिकवि अर्थात् वाल्मीकि। मेरा व्यक्तिगत अनुभव यह रहा कि कविता, गीतख् काव्य संग्रह के लोकार्पण अवसर पर 95 प्रतिशत आदिकवि को मंचासीन याद करते ही हैं और ये पंक्तियां दोहराई जाती हैं ''वियोगी होगा पहला कवि आह से उपजा होना गान, निकल कल आंखों से चुपचाप बही होगी कविता अन्जान।'' के साथ क्रौन्च पक्षी के वध का प्रसंग –''मा निषाद प्रतिष्ठां त्वगमः शाश्वतीः समा। यत्क्रौचमिथुनादिकमवधी काममोहतम्।'' बस इसके आगे कुछ नहीं। हां कहीं–कहीं तो मंचासीन अतिथि कवि की कुछ वेदना युक्त, दुखान्त रचनाओं का उद्धकरण देते हुए वाल्मीकि से तुलना करने में भी नही चिकते, आखिर वे आए किसलिए हैं?

वाल्मीकि के बारे में उपलब्ध जानकारियों के आधार पर, कुछ अंश मात्र ही कहा जा सकता है क्योंकि वाल्मीकिजी को समझना बहुत कठिन कार्य है। गहन अध्ययन बोध के बाद कुछ प्राप्त किया जा सकता है क्योंकि उनके कितने स्वरुप हैं, तपोऋषि, महर्षि, सन्त, आदिकवि और त्रिकालदर्शी मुनि आदि–आदि, चूंकि उनके द्वारा रामायण संस्कृत में लिखी गई अर्थात् देवभाषा में, जब धरती पर देवत्व ही समाप्त हो गया तो उसको कैसे समझा जा सके ? परन्तु प्रसन्नता की बात ये रही कि वाल्मीकि जी को आदिकवि और उनके द्वारा रचित ''रामायण'' आदि महाकाव्य के रुप में सर्वमान्य हुआ। भारत ही नहीं वरन् विश्व के अनेक साहित्यकारों ने अपने शोध से यह साबित किया कि रामायण आदि महाकाव्य है और उसके रचयिता श्री वाल्मीकि जी ही आदि कवि हैं। इस सन्दर्भ में कुछ संदर्भों का उल्लेख करना चाहूंगा।

बृहद्य पुराण में, रामायण को काव्यबीजम्–सनातनम् कहा गया है। रामायणम्–आदि काव्यम्–स्वर्गमोक्ष प्रदायकम् शाङ्र्गधर लिखते हैं– ''कवीन्द्रनौमि बाल्मीकिम् यस्य रामायणीकथाम।'' अब कुछ सन्दर्भ वाल्मीकि जी के बारे में यथा–

''जहां वाल्मीकि भये बाधते मुनिन्दु,
साधुं मरा मरा जपे सिख मुनि रिषि सातकी''– कवितावली

कहत मुनीष महातम्, उलटे सीधे नाम को,
महिमा उलटे नाम की मुनि कियो किरातो। :विनय पत्रिकाः

उलटा जपत बोलते भए ऋषिराज –वरवै रामायण

राम विहाय मरा जपते बिमरी सुधि कवि कोकिलहू की ––कवितावली''

अग्निपुराण में वाल्मीकि का नाम आया है। अब चर्चा करते हैं अवधी में श्रीरामचरित मानस के रचयिता संत कवि तुलसीदास जी की, बड़े आदरभाव से वाल्मीकि जी को याद करते हुए उन्हें नमन किया है, कई प्रसंग हैं उनमें से प्रमुख को यहां उद्धृत करना चाहूंगा–

1–वन्दउ मुनिपद कंज, रामायण जेहि निरमउ।
2–जान आदिकवि नाम प्रतापू।

बालकाण्ड में ही तुलसी बाबा कहते हैं–

बाल्मीकि नारद घट जोनी,
निज निज मुखन कही निज होनी।

अतः स्पष्ट है कि तुलसीदासजी ने रामचरित मानस सृजन की प्रेरणा जान आदिकवि वाल्मीकि से ही पायी, क्योंकि वाल्मीकिजी के आराध्य श्रीराम हैं और तुलसी के भी। वाल्मीकि जी क्या कहते हैं–

''श्रीराम शरणं समस्त जगताम, रामं बिना का गति''

और तुलसीदासजी कहते हैं कि–

''सियाराम मय सब जग जानी,

करहुँ प्रणाम जोरि जुग पानी।''

कहते हैं कि वाल्मीकि जी यात्रियों को लूटने जैसा पापमय कार्य करते थे नारद मिलन, फिर मोहभंग के साथ उनसे 'रामनाम' जपने का मंत्र पाया पर जिव्हा से राम न निकल कर मरा मरा निकलता था जो राम में परिवर्तित हो जाता था क्योंकि वह हृदय से और पश्चाताप तथा पाप निवारण के लिए गुरु आज्ञा से जपते थे, अतः मरा भी राम हो गया और मुक्ति पाई। मुक्ति से तात्पर्य हो सकता है कि वाल्मीकि जी आदिकवि आदि रामायण के रचयिता के रुप में आज भी जीवन्त हैं तुलसी बाबा उन्हें इस तरह याद करते हैं–

उलटा नाम जपत जग जाना,
वाल्मीकि भये ब्रह्म समाना।।

अतः इतने उदाहरणों से स्पष्ट हो गया कि वाल्मीकिजी से ऐसा कृत्य हुआ होगा पर राम की कृपा से अमरत्व पाने के कारण तुलसीदासजी ने भी प्रभावित होकर श्रीरामचरित मानस लिखा। अब प्रश्न यह उठता है कि हरि अनंत हरि कथा अनंता की तरह वाल्मीकि भी क्या कई थे, जो अलग–अलग युगों में हुए– अ– मनुस्मृति में प्रचेता के पुत्र थे ''प्रचेतस वसिष्ठम् च भृगुं नारदेवमेवच''।

ब– स्कन्ध पुराण के अनुसार व्याध बहेलिया थे।

स– राम नाम जपने से दूसरे जन्म में अग्निशर्मा/रत्नाकर हुए और तप करते हुए रामनाम जपते हुए शरीर पर चीटियों ने घर बना लिया, जिसे बॉबी कहते हैं इसलिए इनका नाम सन्त वाल्मीकि हुआ, जैसे पार्वतीजी का भी नाम अर्पणा हुआ था। कुछ लोग इससे सहमत नहीं हैं कि वाल्मीकि जी मरा मरा का जाप करते थे पर इतने उदाहरण मिलने से आखिर नकारा केसे किया जाए ?

तुलसीदासजी ने जितना महत्व और आदर वाल्मीकि जी को दिया है उतना किसी और को नहीं। तुलसी बाबा ने भगवान राम व वाल्मीकि की 3 भेंटे यानी मुलाकातें प्रसंगों का वर्णन किया है–

1– बालकाण्ड में जनकपुरी में जब श्रीराम व अन्य तीनों पुत्रों के विवाह उपरान्त जब दशरथ जी उत्साहपूर्वक दान करने की इच्छा बताते हैं तब दान लेने आए रिषिगण थे–

''बामदेव अरु देव रिषि वाल्मीकि जाबालि
आए मुनिवर निकर तब, कौशिकादि तप सालि।''

2– श्रीराम के वनगमन यात्रा में – प्रयाग से आगे बढ़ने पर वह लक्ष्मण–सीता सहित महर्षि वाल्मीकि के आश्रम पहुंचते हैं। यहां कवि तुलसीदासजी ने वाल्मीकि व राम के मिलन के द्वारा भक्ति व ज्ञान का अद्भुत वर्णन किया है देखें– उनका आश्रम कैसा है–

''देखत वन सर सैल सुहाए,
वाल्मीकि आश्रम प्रभु आए
सुचि सुन्दर आश्रम निराखि
हरष राजिव नन।''

पायः हर मुनि क आश्रम पर जाकर राम सीता लक्ष्मण मुनियों से मिलते हैं पर यहां वाल्मीकि स्वयं राम की अगवानी करते हैं–

''सुनि रघुवर आगमन मुनि, आगे आयउ लेन''

यहां प्रभु राम और महर्षि वाल्मीकि के मध्य जो संवाद होता है वो अभूतपूर्व और आनन्ददायी तथा भक्ति, ज्ञान और आध्यात्म से परिपूर्ण है। वाल्मीकि जी राम का गुणमान करते हैं और राम वाल्मीकि जी का। तुलसीदासजी की कलम से रोचक प्रसंग, वाल्मीकि जी प्रभु राम को देखकर आनन्द सागर में डूब जाते हैं–

''वाल्मीकि मन आनन्द भारी,
मंगल मूरति रुप निहारी'' –अयोध्याकाण्ड

जब श्रीराम से वाल्मीकि जी वनगमन संदर्भ पूछते हए प्रश्न करते हैं तब श्रीराम कहते हैं–

''तम त्रिकाल दरसी मुनि नाथा,
विश्व वदन जिमि तुम्ह हाथा।''
दखि पाय मुनि राय तुम्हार,
भए सकत सब सफल हमार।''
पशसा सुनकर तब वाल्मीकि जो कहत ह–
श्रुतिसत पालक राम तुम,
जगदीश माया जानकी
जा सर्जात जगत पालति
हर्रात रुख पाय कृपा निधान की।

इस तरह भक्तिमय, भक्ति और प्रभु के मध्य संवाद का सरस वर्णन तुलसी बाबा करते हैं। यूं तो राम सभी बड़ों, सन्तों और महात्माओं को आदर मान देते हैं और जिस प्रकार से वाल्मीकि को दिया उतना संभवतः किसी को नहीं दिया। तभी तो कहते हैं–

तुम त्रिकाल दरसी मुनि नाथा.....।

ऐसे प्रसंग पढ़कर आंखों में आंसू आ जाते हैं। एक स्थान पर बालि वध के अवसर पर तुलसी बाबा कहते हैं –

जन्म जन्म मुनि जतन कराही,
अन्त राम कहि आवत नाही।

ऐसे परमपिता परमेश्वर मुनि को सदर प्रणाम करते हैं, मर्यादा पुरुषोत्तम राम का अद्भुत स्वरुप। फिर विश्वामित्र

के कहने पर वह चित्रकूट में निवास करते हैं। लेकिन इसके पूर्व कुछ भाव–भक्ति पूर्ण संवाद, वाल्मीकि जी कहते हैं–

''राम सरुप तुम्हार बचन अगोचर बुठि पर
अविगत अकथ अपार नेति नेति नित निगम कह।''

आप संसार के देखने वाले ब्रह्मा, विष्णु, महेश को भी नचाने वाले हो, वे भी आपको नहीं जान पाते पर जिसे आप जना देते हो वो तुम्हें जान तो लेता है पर तुम मय हो जाता है। आप चितानन्द हैं, सभी विकारों से रहित, आप समय–समय पर नर देह रखकर इस संसार की मानव जाति के कल्याणहित अवतरित होते हो।

राम देखि सुनि चरित तुम्हारे,
जड़मोहहि बुध हो सुखारे।

चित्रकूट में जाने की सलाह पूर्व जब राम पूछते हैं कि अब आगे वनवास में, मैं कहां रहूं तब वाल्मीकि जी कहते हैं–

पूछेहु मोहि कि रहौं कहूं, मैं पूछते सकुचॉ
जहॅ न होउ तहॅ देहु कहि, तुम्हहिं देखाऔ ठॉव।

इस प्रसंग पर एक अलग ही आलेख हो सकता है /फिर लिखने का प्रयास करुंगा/ अभी तो राम को चित्रकूट ले चलते हैं–

''चित्रकूट महिमा अमित, कही महामुनि गाय
आय नहादे सहित वर, सिय समेतू दोऊ भाय।''
––अयोध्या कांड

ऐसे अवतारी सन्त को न तो समय, स्थान, वर्ग, जाति, धर्म में बांधा जा सकता है न ही उसमें अवगुण ढूंढे जा सकते हैं जो सन्त/महाऋषि –सीधे देवर्षि नारद से संवाद करता है वह भला डाकू कैसे हो सकता है–

'ऊॅ तपः स्वाध्याय निरतम, तपस्वी वाग्विदाम् वरम्
नारदं परिप प्रच्छ वाल्मीकि मूर्ति पुङ्गवम्''

वाल्मीकि जी के जन्म स्थान, निवास, सन्दर्भ तमाम प्रसंग और स्थान हैं उनमें से जिन्हें मैं देख पाया बताना चाहूंगा–

अ– वर्तमान पंजाब में अमृतसर से बाघा सीमा पर जाते हुए रास्ते में एक विशाल मंदिर वाल्मीकि आश्रम, तालाब, सीताकुटी व विशाल हनुमान मूर्ति आदि हैं, कुछ का कहना है यही है मुनि का आश्रम।

ब– गंगा नदर के किनारे अतिप्राचीन स्थान ब्रह्मावर्तरुबिठूर कानपुर जिला वहां मंदिर कुटी है, लोग इसे मानते हैं।

स– इलाहबाद के वाराणसी जाते समय रास्ते में मुख्य राजमार्ग से करीब 12–15 किलोमीटर दूर गंगा नदी के किनारे ''सीता मढ़ी'' स्थान है, बड़ा पावन और मनारम। कहते हैं कि यहीं लक्ष्मणजी सीता को वाल्मीकि आश्रम में छोड़कर गए थे। रामचन्द्रजी ने यही स्थान बताया था और यहीं लव–कुश का जन्म होता है, यहीं से वाल्मीकिजी लवकुश को रामकथा गायन सिखा कर अयोध्या भेजते हैं। और भी कई स्थान है जहां वाल्मीकि जी के स्थान बाश्रम बताए जाते हैं क्योंकि आदि कवि वाल्मीकि जी राम जन्म से पूर्व ही उनकी जीवनी/रामायण लिख देते हैं और जैसा–जैसा लिखा वैसा ही त्रेता में घटित होता रहा। वह स्वयं त्रेता में अवतरित होकर राम से मिलते हैं। प्रभु राम की/राजाराम की जितनी आस्थान और विश्वास वाल्मीकि जी के प्रति है उतनी और किसी के प्रति नहीं। अतः यह आलेख सदर उन्हें प्रणाम करना है, यह मानते हुए कि ''तुम त्रिकाल दरसी मुनि नाथा।''

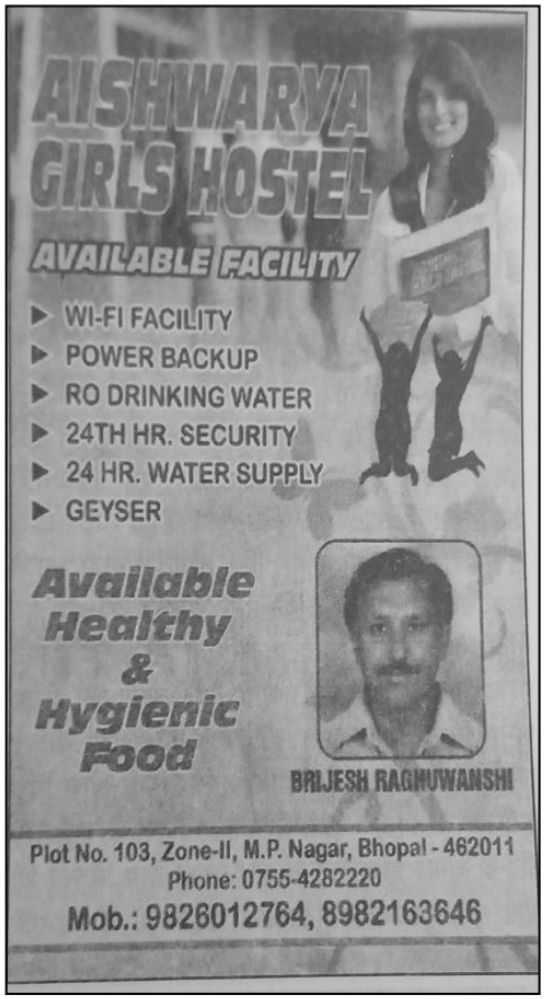

वियाग म जोवन त्याग को भावना

–मनाज कमार श्रोवास्तव

जब एकनिष्ठता का अभाव होता है तब विरह की वेदना भी उतनी प्रगाढ़ नहीं होती। तब तो अल्बेर कामू के उपन्यास 'पतन' के नायक की ही तरह की स्थिति होती है। तब वहां हर व्यक्ति जीवन के एक अनुभव का प्रति. निधित्व करता है और अभाव यदि है तो वह सिर्फ एक अनुभव का अभाव है। उसमें तो जैसा कि कामू लिखते हैं कि जिसे प्यार किया जाता है, उसी की ही एक गुप्त मृत्यु–कामना मन में रहती है। लेकिन यहां स्थिति दूसरी है। यह निष्ठा की चरम सघनता की दुनिया है। यहां तो प्रिय के वियोग में अपना जीवन त्याग देने, अपने बच नहीं पाने के अंदेशे हैं। प्राण तो निकलने को ही आतुर हैं। नेत्रों में जैसे प्राण ही उमड़कर आ समाए हैं। देखने की इतनी उत्कटता। और कोई दृश्य जैसे दृश्य ही नहीं है। यदि अपने प्रिय की चाक्षुष अनुभूति नहीं है तो जैसे जीवन में एक अंधत्व–सा है। देखने का संवेदन जैसे इसी एक संवे. दना से परिभाषित होता है। यही प्यार है। जिस प्यार से जीवन में अमरता का अनुभव होता है, वही प्यार इस स्थिति में भी ले आता है कि जीते ही नहीं बनता। लगता है जैसे अभी प्राण निकल आऐंगे यदि प्रिय का साक्षात् न हुआ। जो प्यार आंखों की चमक है, वही प्यार आंखों को कोई भी और चीज का आस्वाद लेने में विरह के इन विकल क्षणों में असमर्थ भी बना देता है। प्यार जैसे एकदैववाद पर चलता है। तैंतीस करोड़ देवता नहीं, सिर्फ एक देवता। उसी के चरणों के अमृत से जीवन–जल मिले, उसी पर ही जैसे यह प्राण–पुष्प समर्पित हो जाएं। वही बुद्धि, वहीं विद्या, वही शक्ति। वही मन में सृजन के शत कल्प बुने, वही जीवन के सहस्त्राक्ष की तरह रहे और वही जिस पर जीवन भी न्यौछावर हो जाए।

प्यार ही आंखों का आलोक है। लेकिन वियोग में जैसे यही आंखें जलने सी लगती हैं। प्यार एक अर्चिका है। अपने उसी एक देवता के मंदिर में जलती हई। लेकिन विरह में जैसे यही अर्चिका एक ज्वाला बन जाती है और प्राणों को दग्ध करने लगती है। जो सीता अपने प्यार की गिरफ़्त मे है, वही सीता इस समय एक विकट एकान्त की कैद में भी है। लेकिन जैसे और दूसरी सलाखें महसूस भी नहीं होती। जो प्राण आंखों में आ अटके हैं, वे क्या हैं? जैसे आंखें ही सांस ले रही हैं। सांस क्या उसांस। आंखों के अच्छ्वास। वेदना तीव्र हो रही है नित्यप्रति। जिस दिन असह्य हो जायेगी, प्राण इन्हीं आंखों के रास्ते निकल भी

जाएंगे, लेकिन अभी तो इन्हीं आंखों का हठ प्राणोत्सर्जन में बाधा बना हुआ है। दर्शनलाभ की अभीप्सा है। सिर्फ इच्छा ही नहीं है, आग्रह है। सीता के सुनयनों का सत्याग्रह। उस प्यार के साथ उन्हें सारी मृत्युएं स्वीकार हैं, उस प्यार के बिना ये जीवन नहीं। अपने प्रिय के लिए जैसे यम के कठोर कालदंड की भी सविनय अवज्ञा कर देंगे ये नेत्र। प्राण तो राम के बिना निकल ही जाएं लेकिन नेत्रों ने यह एक असहयोग आंदोलन कर रखा है। ये आंखें जैसे बस एक ही सपना देखती हैं। जैसे सीता की आंखों में बसे इस स्वप्न ने भी एक सौगंध–सी उठा रखी है। आंखों में प्राणों का आ बसना सीता की वल्नरेबिलिटी है, लेकिन वह सीता की दृष्टि का सप्राण होना भी है। जैसे सीता के हठ को एक स्फूर्ति–सी मिल गई तो, जैसे अपने प्रिय को देखना उनकी इच्छा ही नहीं, अधिकार भी है। जैसे इस हठ के जरिए सीता के नेत्र अपने प्राप्य को घोषित करते हैं कि इस लक्ष्य को दिलवाए बिना प्राणों को निकलने ही नहीं देंगे। घेराव कर लिया गया है प्राणों का। यह ध्यान देने की बात है कि वाल्मीकि के यहां सीता अपने दुख की चर्चा तो हनुमान से करती हैं, लेकिन विरह–व्यथा

जैसी कोई बात वे नहीं कहतीं। अलबत्ता वाल्मीकि स्वयं पन्द्रहवें सर्ग/सुंदरकाण्ड/ में कहते हैं– ''राम की सेवा में रुकावट पड़ जाने से उनके मन में बड़ी व्यथा हो रही थी।'' सोलहवें सर्ग में वे कहते हैं– हनुमान आब्जर्व करते हैं– ''सहचर से बिछुड़ी हुई चकवी के समान पति–वियोग का कष्ट सहन करती हुई ये जनककिशोरी बड़ी दयनीय दशा को पहुंच गई हैं।'' 19वें सर्ग में वे कहते हैं–''संकल्पों के घोड़ों से जुते हुए मनोमय रथ पर चढ़कर आत्मज्ञानी राजसिंह राम के पास जाती हुई–सी वे प्रतीत होती थीं।'' वे राम के वियोग के शोक में डूबी रहती थीं। 'जैसे नागराज की वधू/नागिन/ मणि–मंत्रादि से अभिभूत हो छटपटाने लगती है, उसी तरह सीता भी पति के वियोग में तड़प रही है।' ''पति विरह शोक से उनका हृदय बड़ा व्याकुल था।'' लेकिन तुलसी की सीता अपने विरह का संदेशा भिजवाने में संकोच नहीं करती। क्या वह जायसी का असर है? या कबीर का? या सूरदास का? मुझे वह सूरदास का ज्यादा दिखाई देता है। उसमें गहराई है और गुणत्व भी। जायसी तो इतने ऊहात्मक थे कि नागमती के विरहताप के कारण प्रेमपत्रिका तो क्या विरहव्यंजना भी वहां संभव नहीं हो पा रही थी: ''जेहि पंखी के नियर होइ, कहै विरह कै बात/सोई पंखी जाई जरि तरिवर होहि निपात।'' तुलसी की सीता के वियोग में अग्नि और जल की उपस्थिति का वैसा ही खेल है, लेकिन तुलसी अपनी संक्षिप्ति के कारण बच जाते हैं। जायसी की नागमती के अश्रु जल–बिन्दु देखिए– ''कुहुकि कुहुकि जस कोइल रोई/रक्त आंसु घुँघची बन बोई/जहँ–जहँ ठाढ़ि होई बनवासी/तहँ तहँ घुँघुची कै रासी/बूंद बूंद महँ जानउँ जीऊँ/गूंजा गुंजि करै 'पिउ पीऊ'/तेहि दुख भए परास निपाते/लोहू बूड़ि उठे होई राते/राते/बिंब भीजि तेहि लोहू/परवर पाक, फाट हिय गोहूं।' तुलसी का संक्षेप वियोगजन्य विक्षेप को गरिमा दे देता है। वहां 'चारिहू पवन झकोरे आगी/लंका दाहि पलंका लागी' का संदेश पवनपुत्र को देने की जरुरत नहीं पड़ती। ''तनु तूल'' का संक्षेप ''पहल पहल तन रुई झाँपै/हहरि हहरि अधिकौ हिय काँपै'' से ज्यादा उदात्त हो जाता है। वह वियोगजनित कृशता का ही वर्णन नहीं है, वह कैद में होने, प्रतिकूल परिस्थितियों में होने, शत्रु–वृत्त में होने से उत्पन्न है। जायसी के 'दहि कोइला भइ कन्त सनेहा/तोला माँसु रहा नहिं देहा/रकत न रहा बिरह तन जरा/रती रती होई नैनन्ह ढरा' में तो फिर भी मार्मिकता है, उस उर्दू शायर की तुलना में जो वियोगी प्रेमी को जूं या खटमल बना देता है– ''इन्तहाए लागरी से जो नजर आया न मैं/हँस के वो कहने लगे बिस्तर का झाड़ा चाहिए।'' इसलिए

वीरानों, जंगलों, वनखण्डियों, पहाड़ियों, गांवों, खेतों में टीसती हुई एक साफ, लेकिन अशरीरी आवाज ''वाले विजय देवनारायण साही के आब्जर्वेशन/जायसी के वियोगवर्णन पर देखें साही के कमेन्ट्स/ से बहुत असहमत न होते हुए भी इतना तो कहा ही जा सकता है कि तुलसी की सीता मन के भूगोल में ज्यादा गहराई और गांभीर्य में उतरती हैं। वहां ऋतुवार वियोग–दशा को नहीं गिनाया गया है। सीधे कुछ ऐसा कहा गया है जिससे राम को राजीव नयन भी भर आएं। नागमती के दुख से सारी सृष्टि आंसुओं से भीगी लगती है, सीता के दुख से सृष्टा ही अश्रुपूरित हो उठा है।

मॉ सीता के 'तनु तूल' की ओर तुलसी ने हनुमान के द्वारा उनके प्रथम दर्शन के वक्त भी ध्यान आकृष्ट किया था। तब 'कृश तनु' कहा गया था। अब यहां हनुमान के द्वारा उच्चरित सीता–संदेश में वे स्वयं को कृश नहीं कहतीं। वे अपने शरीर को रुई के समान हो गया बताकर उस दुर्बल गात्रता की ओर इंगित भले ही करती हैं लेकिन उससे भी कहीं ज्यादा वे अपने शरीर के हल्के हो जाने की बात भी करती हैं। रुई जिसे जलना है उसी अग्नि में जो अपने प्रिय राम के विरह की अग्नि है। जिस शरीर के

लिए यजुर्वेद में प्रार्थना की गई है– ''अश्मा भवतु नस्तनू'' कि हमारे शरीर पत्थर के समान दृढ़ हों, वही शरीर रुई के समान हो गया है। काया का कपास हो जाना। सूत्र पुष्प की तरह शरीर। अश्म की तरह नहीं श्म। अम्बर की तरह हो गई चादर। वैदेही देह की पीड़ाओं की शिकायत नहीं करेंगी, लेकिन कृशांगी सीता का अस्तित्व अब गया, तब गया की भयावह अस्थिरताओं को झेल रहा है। यदि विरह अग्नि है और तन रुई है तो यह एक दीपिका है, जल रही है। अपने प्रभु को मन मंदिर में धारे हुए। ठाकुर प्रसाद सिंह की एक कविता है–''मेरे आंगन में है रुई/रुई का सूत/उत्तर से आंधी/है दक्षिण से पानी/मुझको है दिए की बाती बनानी''। सीता तो हैं ही प्रेम की बाती। लेकिन वे उस सत्याग्रह पर भी हैं जिसमें चरखा चलाकर जो रुई, जो कपास, जो सूत्र पुष्प निकलना है वह स्वयं सीता की तनिमा से बना है। वक्त इसे वह सूत्र–पुष्प सिद्ध करेगा जो सीता के अनशन पर बैठने का फल है या कि इसी सूत से सीता का कफन बुना जाएगा? सेमल के पुष्प से हो गए जीवन में अन्त में क्या रुई ही निकलेगी? जीवन न हुआ, धोखा हो गया–''धोखैं ही धोखैं उहकायौ/रीतो पर्‌यौ जबै फल चाख्यौ, उड़ि गयो तूल, तांवरो आयौ।'' सीता की तो तृष्णा ही यह है कि यदि इस अस्तित्व को रुई की तरह होना ही है तो यह रुई के उस फाह की तरह हो जो राम के घावों को आराम दे।

''बिरह अगिनि'' और ''तनु तूल'' सीता की तपश्चर्या के प्रतीक हैं। कम नहीं सहा है सीता ने। जीवन तपस्या सा हो गया है। वियोग में जैसे यही योग है। क्या कागभुशुंडि उत्तरकाण्ड में गरुड़जी को इसी अग्नि और इसी तूल की बात बता रहे थे–''जोग अगिनि करि प्रगट तब कर्म सुभासुभ लाइ/बुद्धि सिरावै ग्यान घृत ममता मल जरि जाइ/तीनि अवस्था तीनि गुन तेहि कपास तें काढ़ि/तूल तुरीय सँवारि पुनि बाती करै सुगाढ़ि?'' सीता यदि साधिका हैं जिन्हें अपने परम प्रभु को पाना है जो अग्नि और तूल का यह सफर उन्हें तय करना ही है। यदि सीता के सपनों के बुने जाने के लिए तन को तूल बनाना जरुरी है तो सीता वे भी कर दिखा रही हैं। यदि रावण की यंत्रणाओं की कुटाई के बाद ही इस कपास को सफेद झक्क होकर निकलना है तो सीता उसके लिए भी प्रस्तुत हैं। राम की पत्नी के लिए कुँअर बेचैन की 'पत्नी' शीर्षक गीत पंक्तियां मौजूं बैठती हैं–''इन गर्म दिनों के मौसम में/कितनी कृश कितनी क्षीण हुई/उजली कपास–सा चेहरा भी/हो गया कि जेसे जली रुई।'' समीर में उड़ती हुई रुई। कहां जाएगी कुछ पता नहीं। पता नहीं कि अवधि पूरी होने से पहले राम आ पाएंगे। पता नहीं कि रावण उन्हें माहान्त पर मार डालेगा या राम आकर उन्हें बचा लेंगे। अनिश्चितताओं और उद्विग्नताओं की वायु के थपेड़े खाता जीवन। शब्दशः आन्दोलित।

और इधर सांसें जलती हैं सीता की– ''दिल तो उलझा ही रहा जिंदगी की बातों में/सांसे जलती हैं कभी–कभी रातों में'' कपिल कुमार के लिखे और कनु रॉय के संगीतबद्ध इस गीत के नायक की सॉसें तो कभी कभी जलती थीं। सीता की तो नित्यप्रति। सॉस न हुई दीपशिखा हो गई। सॉस न हुई अगरबत्ती हो गई। जिन सॉसों में राम की खुशबू बसी हो वे तो अपने आप में प्रार्थना हैं। यह ऊर्ध्वश्वास है। जैसे अग्नि ऊर्ध्वगामी होती है, वैसे ही सीता की सॉसें भी ऊर्ध्वगामी हैं। इन सॉसों में राम के बिना तो जैसे एक जलता हुआ मरुस्थल है। सॉसों का एक ऊष्ण प्रवाह है। जैसे एक लावा हो। शिवमंगलसिंह सुमन ने जब ''सॉसों का हिसाब'' पूछा था तो यह कहा था–''सॉसें हैं केवल नहीं हवाई स्पन्दन/यह जो विराट में उड़ा बवंडर जैसा/यह जो हिमगिरि पर है प्रलयंकर जैसा/इसके व्याघातों को क्या समझ रहे हो/इसके संघातों को क्या समझ रहे हो?/यह सॉसों की नई शोध है भाई!। यह सब सॉसों का मूक रोध है भाई/जब सब अंदर अंदर घुटने लगती हैं/जब वे ज्वालाओं पर चढ़कर जगती हैं/तब होता है भूकंप श्रृंग हिलते हैं/ज्वालामुखियों के वो फूट पड़ते हैं/पौराणिक कहते दुर्गा मचल रही है/आगंतुक कहते दुनिया बदल रही है/मरुस्थल की उड़ती बालू का लेखा दो/प्यासे अधरों की अकुलाई रेखा दो/क्या किसी सॉस की रगड़ ज्वाला में बदली ? क्या कभी वाष्प सी सांस बन गई बदली?'' सीता की सॉसों में यों एक ताप है। भीतर के संताप से जैसे सॉस भी ज्वालाध्वज हो गई है। इस ज्वालाजिह्व में क्या स्वयं सीता भस्म हो जाएंगी? सीता की अर्चिष्मान– सॉसें आत्मघाती क्यों हो चली हैं? क्या इन सॉसों के स्फुल्लिंगों से सीता का ही शरीर क्षण–मात्र में धूधूकर जल जाएगा या ये उग्रा और कराली, प्रदीप्ता और लोहिता सॉसें अपनी उद्दीप्ति से कोई दूसरा दृश्य रचेंगी? राख को संस्कृत में वैष्णवी कहते हैं, श्री कहते हैं। क्या राख होकर ही सीता अपने श्रीस्वरुप को उपलब्ध होंगी? सीता की सांस अपने आप में जैसे एक ज्वलन्त प्रश्न बन गई है। क्या उनकी सांस के इन्हीं भभूकों से ही तो लंका भस्म नहीं हो गयी?

राम के विरह में, लेकिन यहां तो, सीता को सांसें समीर और ज्वाला दोनों की संयुक्ति सी लगती हैं। जैसे हवाएं आग भड़का रही हों। झंझा और झंझार इन लपटों में सीता का शरीर क्षण–मात्र में खाक हो गया होता। राम के बिना सीता क्षण मात्र नहीं रहें। फिर वे जिन्दा कैसे हैं? गीतावली में तुलसी कहते हैं–'' बिरह अनल स्वासा समीर निज तनु जारिवे कहँ रही न कछु सक/अति बल जल बरषत दोउ लोचन दिन अरु रैन रहत एकहिं तक।''सीता के चित्ताकाश में जैसे यह एक आंतरिक प्रलय है। पंचभूतों का भैरव मिश्रण। सीता स्वयं भू देवी हैं, इस वक्त जैसे उनके भीतर शून्य है, विरह की वह्नि है, सॉसों का समीर है और अश्रुओं का स्त्राव है। क्षिति और आकश, अग्नि और वायु और जल सब एक दूसरे में गड्डमड्ड हो गए हैं। लेकिन इस आंतरिक प्रलय को झेलते हुए सीता किसी तरह बची रह गई हैं भीतर बहुत कुछ टुकड़े–टुकड़े हो गया है। भीतर के खंड–खंड हो जाने पर भी सीता की ही जिम्मेदारी है कि वे स्वयं को साबुत बचा सकें।

सीता जिस आंतरिक ध्वंस से गुजर रही हैं, कैसे उन संवर्तक सॉसों के बीच वे स्वयं को सुरक्षित रख पाती होंगी? संवर्तक यानी प्रलयाग्नि। सीता के नेत्रों से जो लगातार आंसू बहते रहते हैं वे भी उसी प्रलय जल की तरह हैं। हरिऔध के शब्दों में ''बाढ़ में जो बहे न बढ़ बोले/किसलिए तो बहुत बढ़े आंसू/....''जो कि हैं जी जला रहे उनको/क्यों जलाते नहीं जले आंसू।''

सीता जब ये कहती हैं कि विरहाग्नि में उनकी देह जलने से इसलिए बच गई क्योंकि अपने हित के लिए अश्रुधारा के निरन्तर प्रवाह ने उन्हें जलने नहीं दिया तो वे एक काव्यात्मक बात ही नहीं कर रही हैं, मनोवैज्ञानिक बात भी कर रही हैं। ब्तलपदह पे ीमंसपदहए रोना भी एक डिफेंस मेकेनिज्म है। एक रक्षण प्रणाली है। अपने प्रियजन की मृत्यु से शोक में चले गये लोगों को इसलिए रुलाया जाता है ताकि यह डिफेन्स सिस्टम सक्रिय हो सके। मनोवैज्ञानिक कहते हैं– च्मतपवके व िचतवसवदहमक बतलपदह ;ब्तलपदह श्रंहेद्ध ंतम ीनहम भ्मंसपदह मअमदजेण ैव पज बंद ेवउमजपउमे ींचचमद ूीमद ीमंसपदह जींज ंजवद व िइवजजसमक नच जीवनहीजे ंदक मिमसपदहे ूपसस बवउम तनीपदह वनजए ंदक पदजव श्बवदेबपवने ूंतमदमेश्ूीपबी बंद इम चंपदनिस ूीपसम हवपदह जीतवनही पजण जैम उवतम बतलपदह जीम उवतम मउवजपवदंस चंपद ंदक ीनतजपदह लवन मिमसए जीमद लवन बंद ादवू जीम उवतम चमदज नच मदमतहल लवन ंतम तमसमें. पदहण बतलपदह पे जीम अमीपबसम जीम इवकल ंदक ेले. जमउ नेमे जव बसमंत वनज ंदक तमसमेंम वसक ीमसक मउवजपवदंस मदमतहलण आंसू एक तरह का भावनात्मक पसीना है। आत्मा के जीवित रहने का श्रम। जैसे कि मन और चित्त ने रगड़ रगड़कर नहाया हो आंसुओं के गर्म शॉवर में और फिर एकदम ताजा और हल्का महसूस कर रहे हों। आंसू में रक्षण और पोषण की शक्ति है। सिंड्रेला जब अपनी मां की कब्र पर रोती है तो उस कब्र पर रो.

पित पौधा पोषित होकर वृक्ष बन जाता है। रापुन्जेल के आंसू अंधे राजकुमार का उपचार कर देते हैं। आंसू सीता के हृदय में राम की उपस्थित हैं। म्डण् ब्पवतंद ने ज्मंते दं पदजे में लिखा है कि कयामत के दिन सिर्फ आंसू ही तौले जाएंगे– व्दसल जमंते पसस इम मपहीमक ज जीम सेंज रनकहउमदज इसी पुस्तक में इसी तरह का एक दूसरा सूत्र वाक्य है– म बतल इमबंनेम म सवदह वित सवेज चंतंकपेमण् सीता का स्वर्ग तो राम के साथ में था। राम से बिछुड़ना तो सीता के नंदनवन का खो जाना है। सीता उसी के लिए अश्रुपूरित हैं।

'निज हित लागी' यह आंखों का निजी हित राम के मुखचन्द्र दर्शन की कामना में भी है। बिना राम को सामने देखे इन आंखों के आंसू नहीं रुकेंगे। ''अतिहि अधिक दरसन की आरति/रामवियोग अशोक बिटप तरसीय निमेषकलप सक टारति/बार बार बारिन लोचन भरि भरि बरत बारि उर ढारति/मनहूँ बिरह के सद्य धाय हिये लखि तकि तकि धरि धीरज तारति/तुलसीदास जद्यपि निसि बासर छिन छिन प्रभु मूरतिहि निहारति/मिटति न दुसह ताप तउ तनु की यह बिचारि अंतरगति हारति।'' गीतावली में तुलसी के शब्द।

इसलिए सीता पर आया हुआ यह संकट असाधारण है। सीता के इस आंतरिक विध्वंस की गंभीरता को पहचानना जरुरी है। यह तो सीता पर जैसे प्रलय ही आ गई है। जिस कातरता के साथ सीता ने वह मंत्र कहा था कि ''दीनदयाल बिरद संभारी।'' उसी कातरता के साथ अब एक बार फिर इस संदेश में दीनदयाल की याद की जाती है' 'सीता के अति बिपति बिसाला/बिनहिं कहे भल दीनदयाला।' वही संकट भारी अब 'बिपति बिसाला' के रुप में इस संदेश में प्रतिध्वनित हो रहा है। 'दीनदयाला' शब्द का अगूढ़ व्यंग्य जैसे बार–बार सृष्टि की किन्हीं अदृश्य दीवारों से टकराता है, जैसे वह दुनिया भर में प्रतिगुंजित हो रहा है। यह बिपत्ति सीता की किसी दुर्बुद्धि के कारण सीता द्वारा नहीं झेली जा रही, बल्कि झेलनी पड़ ही इसलिए रही है कि सीता की सन्मति स्थिर है और वे रावण के बहकावे में नहीं आई हैं। इसलिए यह 'जहां कुमति तहं बिपति निदाना' वाली बात नहीं है। जैसे तुलसीदास भगवान से थाने में रिपोर्ट करते हैं कि मेरे दिल के घर में चोर आ बसे हैं, इससे भारी बिपत्ति आन पड़ी है, वैसा भी कुछ यहां नहीं है। ''मैं केहि कहौ बिपति अति भारी/श्री रघुबीर धीर हितकारी/मम हृदय भवन प्रभु तोरा/तहँ बसे आई बहु चोरा/अति कठिन करहिं बर जोरा/मानहि नहिं बिनय निहोरा/तम मोह लोभ अहंकारा/मद क्रोध बोध रिपु मारा/अति करहिं उपद्रव नाथा/मरदहिं मोहि जानि अनाथा।'' तुलसी के इस आत्म निवेदन जैसी ''बिपति अति भारी'' यहां नही है। सीता को तो तम मोह लोभ, अहंकार, मद, क्रोधादि दुर्गुण छू भी नहीं गए। लेकिन तुलसी के यहां 'बिनय निहोरा' है और सीता के यहां ''बिनहि कहे'' की स्थिति। सीता तो सर्वथा निर्दोष हैं। बेकसूर, बेखता, बेगुनाह और बेदाग। सीता–सी मासूम स्त्री को यह विपत्ति झेलनी पड़ रही है। इसी अर्थ में यह आपदा विशाल है। राम को तो ''विपत्ति दमन'' कहा ही गया है। तुलसी उन्हें याद ही यों कहते हैं–''रघुपति बिपति दवन/परमकृपालु प्रनत प्रतिपालक पतित–पावन/कूट कुटिल कुलहीन दीन अति मलिन जवन/सुमिरत नाम राम पठये सब अपने भवन।'' लेकिन यह सच है कि राम उसी ''परम कृपालु'' की तरह यहां 'दीनदयाल' हैं और यहां के 'बिनहिं' की तरह वहां के 'प्रनत प्रतिपालक' हैं किन्तु सीता न क्रूर हैं न कुटिल हैं। फिर भी वे दीन और अति मलिन हो गई हैं। इसी अर्थ में सीता की यह विपत्ति विशाल है। सीता के लिए तो ''नाम पाहरु दिवस निसि ध्यान तुम्हारा कपाट'' है, फिर उन पर विपत्ति का यह काला मेघ कैसे छाया हुआ है जबकि हनुमान जानते हैं कि ''कह हनुमंत बिपत्ति प्रभु सोई/जब तब सुमिरन भजन न होई।'' यहां तो प्रतिपल वही हो रहा है और फिर भी यह विपदा। इसीलिए इसे विशाल कहकर इस संकट की असाधारणता को रेखांकित किया गया है। सीता इसीलिए त्रिजटा के सामने हाथ ोड़ के बोली थीं–'त्रिजटा सन बोली कर जोरी/मातु बिपति संगिनि तैं मोरी।' जो राम के नित्यसंग हैं, वे विपत्ति को संगिनि कहने की स्थिति में आ जाएं, इससे बड़ी त्रासदी और क्या हो सकती है? सीता यह विशाल दुख जनहित के लिए ही तो सह रही हैं– भूर्ज तरु सम संत कृपाला/परहित निति सह बिपति बिसाला। बिपत्ति के नाश के लिए ही तो राम ने धनुष धारण किया है: राजिब नयन धरेंधनु सायक/भगत बिपति भंजन सुखदायक। यदि मान्यता यह है कि ''छुटे न बिपति भले बिन रघुपति'' तो सीता तो राम राम ही रट रही हैं। 'जपति हृदय रघुपति गुन श्रेनी।' फिर बात क्या है? यदि उसके बाद भी विपदा है तो फिर बात छोटी मोटी नहीं है, विशाल है।

सीता इस विपत्ति को केसे सह रही है। गीतावली में राग जैतश्री में तुलसी इसका पूरा दृश्य खींचते हैं– सुनहु राम बिश्रामधाम हरि! जनकसुता अति बिपति जैसे सहति/हे सौमित्र बन्धु करुनानिधि! मन महँ रटति प्रगत कहति/निजपद जलज बिलोकि सोकरत नयननि बारि रहत न एक छन/मनहुनील नीरजससि। सम्भव रबि–बियोग दोउ सवत सुधाकन। सीता की यही 'अति बिपति' यहां 'बिपति बिसाला' है। यह स्थिति जहां सीता के आंसू धरती पर गिरने से पहले जल जाते हैं यह स्थिति

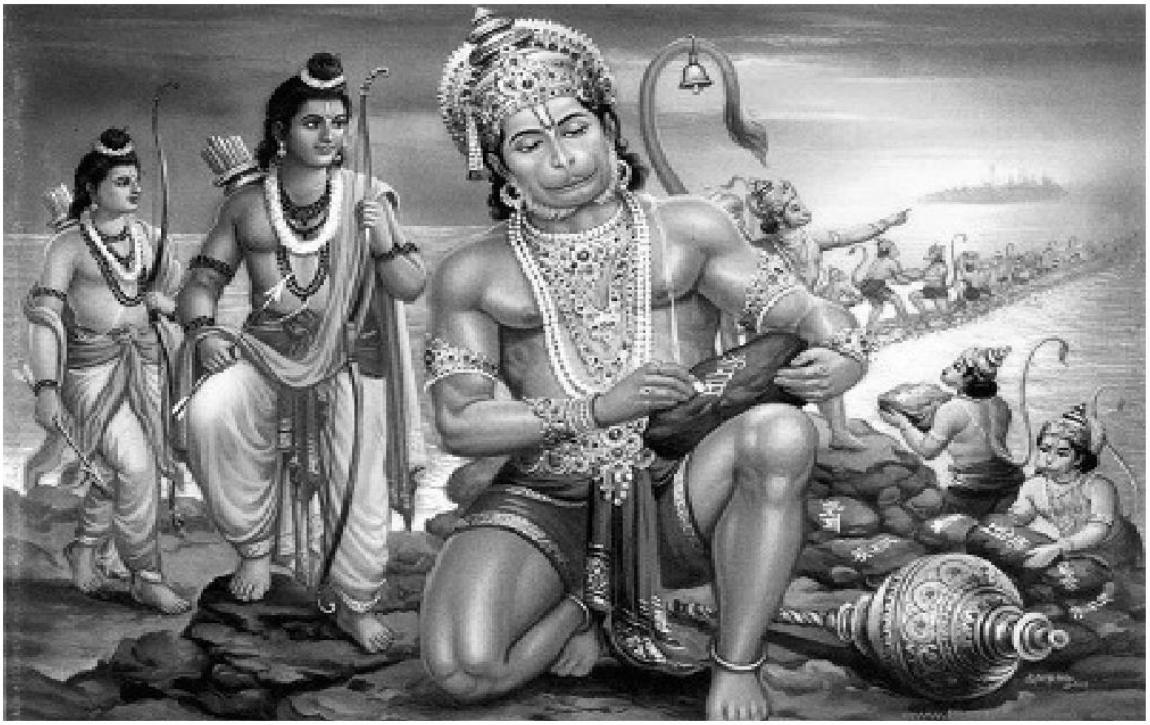

जहां सीता जैसी स्वाभिमानिनी नारी को ''बिनहिं'' होना पड़ा। सीता कैसे विनत और प्रणत होंगी? राम के लिए तो वह डूब मरने वाली बात है जब उनके हृदय की शोभा उनके पैर पड़े, जिसका मस्तक वे सदा उन्नत चाहते थे, वही सीता विनय करे। घुटनों पर झुकी हुई सीता की छाया भी राम सह न सकेंगे। निष्पाप, निष्कलुंष और निरपराध सीता को रावण के हाथों मिली यंत्रणाएं तो एक ओर हैं, लेकिन स्वयं राम के लिए यह असह्य है कि उनकी हृदयेश्वरी को विनय की नौबत आ जाए। अपने ही पति से विनय। अपने ही अंतरंग को दीनदयाल जैसा सार्वजनिक सम्बोधन करना पड़े, यह हालत। राम होंगे दीनदयाल। लेकिन सीता कैसे अकिंचन हो गईं। राम को तो यह प्रश्न ही मथ देने वाला है। जिसे राम ने अपनी अंतरात्मा के गौरवासन पर प्रतिष्ठित किया है, वह उन्हें उनके लोकाभिधान की याद दिला रही है– यह स्थिति अपने आप में ही कितनी दारुण है। राम की आंखों में आंसू क्यों नहीं आएंगे।

इसलिए यह पंक्ति सीता के कथन के रुप में ज्यादा मार्मिक लगती है जबकि पंडितों ने इसे हनुमान के द्वारा राम को कहे गए कथन के रुप में बताकर इसकी कविता बिगाड़ दी है। सीता के द्वारा स्वयं का नाम लेना विपत्ति की विशालता का ही एक उदाहरण और एक प्रमाण बन जाता है, जबकि एक पंडित कहते हैं ''हनुमान जी लंका से लौटकर आये तो उन्होंने भगवान रामचन्द्र से सीताजी की अवस्था का वर्णन किया। उन्होंने बताया कि सीताजी दिन रात राम–नाम का ही जाप किया करती हैं और बड़े कष्ट में हैं। उन्होंने तो यहां तक कह दिया–''सीता कै अति बिपति बिसाला/बिनहि कहे भल दीनदयाला।'' एक कहते हैं–''यह कहते हुए हनुमान को सीता की दशा की स्मृति हो गाई और कुछ अधिक न कह केवल इतना ही कह सके– सीता के अति बिपति बिसाला।'' रामकिंकर उपाध्याय जी ने भी इसे हनुमान के कथन के रुप में बताया है। सभी जगह यह हनुमान के कथन के रुप में वर्णित की गई पंक्ति है। लेकिन मुझे यह स्वयं सीता के ही उसी संदेश का हिस्सा लगती है जिसके खत्म होने का कोई संकेत तुलसी ने नहीं दिया बल्कि इसके ठीक बाद का दोहा राम को तुरत चले ''आने'' का जो आह्वान करता है, वह भी उसी संदेश के ही अंग की तरह ही है। सीता के स्वयं के नामोच्चार की अर्थच्छवियां बहुत दूर और बहुत गहरे तक जाती हैं। सीता के दुख को हनुमान तो क्या स्वयं सीता भी नहीं कह सकतीं। अनुभूति के सामने भाषा हमेशा हार जाती है, चाहे भाषा स्वयं भोक्ता की ही क्यों न हो? न कहने में ही भला है। यदि हनुान जैसे वाग्विशारद का यह निष्कर्ष है ो वह भी एक बड़ी बात है। लेकिन यदि वह निष्कर्ष स्वयं सीता का हो तो वह निष्कर्ष अन्यतम है।

सदगण एव सघष हो किसो का राम बनात ह

–सोताराम गप्ता

पिछले दिनों डाक से एक पत्रिका आई। उसके मुख पृष्ठ पर एक अत्यन्त सुंदर, सार्थक व नयनाभिराम चित्र छपा था। चित्र में राम माता कौशल्या के चरण स्पर्श कर रहे हैं। चित्र के नीचे मानस की सुंदर पंक्तियां लिखी हैं– प्रातकाल उठि कै रघुनाथा, मातु पिता गुरु नावि हं माथा। मैंने ये चित्र अपने साढ़े चार वर्ष के पौत्र प्रशस्त को दिखलाया और उसे चित्र के विषय में बतलाया। उसने प्रश्नों की झड़ी लगा दी। भगवान राम माता कौशल्या के पैर क्यों छू रहे हैं? पैर छूने से क्या होता है? मेरे मन में भी अनेक प्रश्न उठ खड़े हुए। जो स्वयं भगवान कहजाते हैं वो क्यों सबके पैर छूते हैं? वास्तव में इन्हीं कुछ प्रश्नों के सही उत्तरों में निहित है एक बालक के भगवान बनने की प्रकिया।

राम के समकालीन अथवा उनके बाद भी न जाने कितने बालक अथवा व्यक्ति हुए हैं लेकिन हम केवल राम को जानते हैं। नहीं भी जानते तो उनका नाम अवश्य सुना है। क्या हम राक को इसलिए जानते हैं कि राम एक प्रसिद्ध राजा के पुत्र थे? न जाने कितने पराक्रमी व वैभवशाली राजा और उनके पराक्रमी व वैभवशाली पुत्र हुए हैं लेकिन हम कहां उन्हें जानते हैं? यदि हम राम को जानते हैं तो हम उन्हें उनके विशिष्ट व्यक्तित्व के कारण जानते हैं व उनके उदात्त गुणों के कारण उन्हें भगवान मानते हैं। बचपन से ही राम गुणों का आगार हैं। बालक राम प्रातःकाल उठकर माता–पिता व गुरुओं अथवा अग्रजनों को शीष नवाते हैं।

राम में बचपन से ही बड़ों के प्रति आदर–सम्मान, अभिवादन व शिष्टाचार का संस्कार है। राम माता–पिता व गुरुओं का सम्मान करते हैं। वे माता कौशल्या का ही नहीं सभी माताओं का पूर्ण आदर करते हैं। राम एक आदर्श पुत्र व शिष्य ही नहीं एक आदर्श भाई भी हैं क्योंकि वे अपने सभी भाइयों से अगाध प्रेम करते हैं व उनका मार्गदर्शन करते हैं। ऐसा बालक सबका स्नेह व आशीर्वाद पाता है। यह स्नेह और आशीर्वाद ही है जो किसी को भी ऊंचाई पर ले जाने में सक्षम है। राम भी अपने इन्हीं गुणों के कारण बहुत ऊंचे उठ जाते हैं। अपने पूरे जीवनकाल में अवस्थानुसार वे सदैव सद्गुणों का पालन करते हैं।

राम एक अत्यंत आज्ञाकारी पुत्र हैं। पिता व गुरु की आज्ञा से वे अल्पवय में ही राक्षसों का संहार करने के लिए गुरु के साथ वन में चले जाते हैं व पिता के संकेत मात्र से चौदह वर्ष का वनवास सहर्ष स्वीकार कर लेते हैं। विमाता कैकेयी के कारण उन्हें चौदह वर्ष वन में व्यतीत करने पड़ते हैं लेकिन वे भूलकर भी उन्हें दोष नहीं देते व उनके प्रति उनका आदर कम नहीं होता। राम की सकारात्मकता तो देखिए जब वनवास के दौरान एक मुनि उनकी इस अवस्था के लिए कैकेयी को दोष देते हैं तो वे कहते हैं कि मुनिवर माता की कृपा के कारण ही तो मुझे आपके दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। इसी सहिष्णुता व सकारात्मकता ने राम को राम बनाया।

राम एक धीरोदात्त नायक हैं। उनके चरित्र में किसी तरह की लड़ता नहीं है। उनके चरित्र में किसी प्रकार का पक्षपात अथवा असहिष्णुता नहीं है। वे पूर्णतः समन्वयवादी हैं। वे अत्यंत विनम्र हैं। विनम्रता के साथ–साथ उनमें पराक्रम व साहस भी कम नहीं है। उस समय के जितने भी आततायी हैं वे उन सबका सफाया कर डालते हैं। राम दूसरों पर अन्याय होता देखकर तटस्थ नहीं रहते। वे भयमुक्त समाज के पक्षधर ही नहीं भयमुक्त समाज के निर्माता भी हैं। वे जहां भी जाते हैं लोगों को आतंक से मुक्त करवा कर उन्हें आराम से जीवन जीने का अवसर उपलब्ध करवाते हैं। वनवास के दौरान वे सभी वनवा

सियों का स्नेह व सम्मान पाते हैं क्योंकि उनमें सबको अपना बना लेने का गुण है। राम न केवल उन्हें समानता का दर्जा देते हैं अपितु उनके विकास के लिए भी कार्य करते हैं। व्यक्तिगत रुप से भी राम न जाने कितने लोगों को श्राप, अपराध–बोध अथवा जड़ता से मुक्त करते हैं।

राम विषम से विषम परिस्थितियों में विचलित नहीं होते। उनमें विषमताओं को अवसर में बदलने का विशेष गुण है। वे संघर्ष भी कम नहीं करते। सीमित साधनों के बावजूद वे रावण जैसे अति बलशाली शासक से युद्ध करते हैं और अपने कौशल से उसे पराजित कर देते हैं। रावण उनका सबसे बड़ा शत्रु है लेकिन वे रावण के गुणों को भी बहुत महत्व देते हैं। जब रावण मृत्यु के निकट होता है तब राम अपने अनुज लक्ष्मण को रावण से धर्म व नीति की शिक्षा लेने के लिए भेजते हैं। आज कितने लोग हैं जो अपने शत्रुओं के गुणों को स्वीकार कर उनका आदर करते हैं व उन्हें अपने जीवन में लागू करते हैं? आज हमारी सबसे बड़ी विडम्बना यही है कि हम जिन्हें अपना विरोधी समझते हैं उनके सद्गुणों को स्वीकार कर उन्हें महत्व देना तो दूर उन सद्गुणों को अपनाने से भी परहेज करते हैं।

राम को हर सद्गुण व संघर्ष स्वीकार्य है। वास्तव में राम को इन्हीं गुणों ने भगवान राम बनाया। सद्गुण व संघर्ष ही किसी को राम बना सकते हैं। सहिष्णुता ही किसरी को राम बना सकती है। यदि राम के चरित्र में इन गुणों का समावेश नहीं होता तो क्या आज वे हमारे आराध्य हो सकते थे? हम राम के गुणों के कारण उन्हें भगवान कहते हैं। उन्हें पूजते हैं। लेकिन क्या हम वास्तव में पूजना जानते हैं? हम मूर्तियों की पूजा करते हैं। वास्तव में मूर्तियां तो प्रतीक होती हैं पूजा गुणों की ही होती है। भगवान की पूजा, वंदना, गुणगान अथवा प्रशंसा क्यों की जाती है?

जब हम किसी के सामने किसी की प्रशंसा करते हैं तो हमारा उद्देश्य प्रशंसित के गुणों से स्वयं को और दूसरों को प्रेरित करना होता है। गुणमान अथवा प्रशंसा से तात्पर्य किसी के चरित्र की सकारात्मकता को स्वीकार कर उससे प्रेरणा लेना व उसे अपने जीवन में उतारना ही होता है। पूजा, वंदना, गुणगान अथवा प्रशंसा का उद्देश्य भी आराध्य के गुणों को स्वयं में स्थापित करना ही होता है। यदि हम किन्हीं गुणों के कारण किसी की प्रशंसा, पूजा, वंदना अथवा गुणगान करते हैं लेकन आचरण उन गुणों के विपरीत करते हैं तो ऐसी प्रशंसा अथवा पूजा निरर्थक होगी। राम कोई मूर्ति नहीं सद्गुणों का समुच्चय हैं। राम के सद्गुणों को आत्मसात करना ही उनकी सच्ची पूजा, वंदना, गुणान अथवा प्रशंसा है।

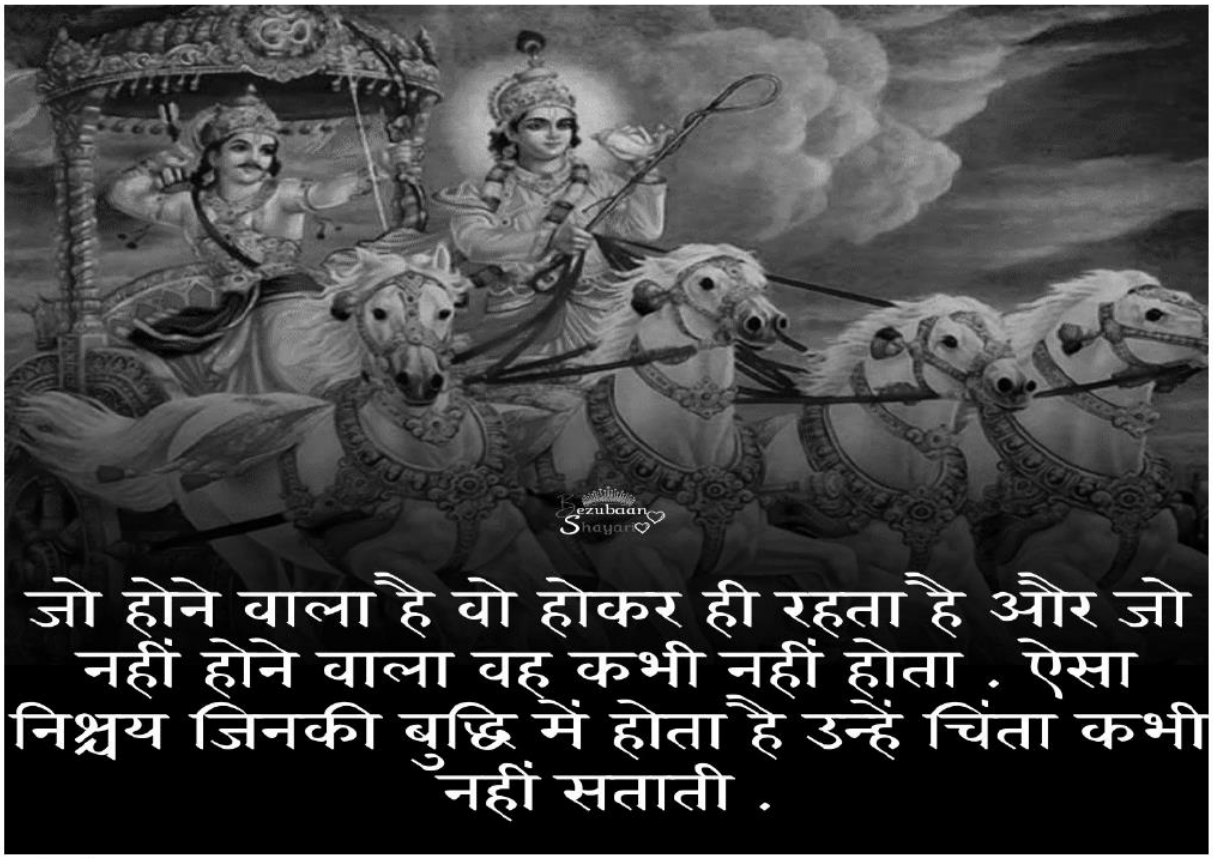

हनुमानजी के जन्म लेने के कारण

श्रीहनुमान के जन्म लेने के भी कई कारण बताये गये हैं। जिस तरह ''नानाभांति राम अवतारा'' है, उसी तरह कपिवर हनुमान के जन्मों की विधि कथाएं हैं। कुछ संक्षेप में इस प्रकार हैं–

'पुत्र प्राप्ति की कामना लेकर माता अंजना ने अपने पति केशरी के साथ त्रिलोकेश्वर भगवान शिव की उपासना की। काफी समय की तपस्या के उपरान्त प्रसन्न होकर शिवजी ने उन्हें वरदान दिया कि तुम प्रातःकाल सूर्यदेव की ओर मुख करके खड़ी हो जाना, उस समय तुम्हारे हाथ में जो सामग्री आ गिरे उसे प्रसाद समझकर भक्षण कर लेना, इससे तुम्हें अभीष्ट पुत्र की प्राप्ति होगी। शिवजी की आज्ञा अनुसार अंजना ने वैसा ही किया। प्रातःकाल जब वह अंजलि बांधे सूर्य भगवान के समक्ष खड़ी थी, उसी समय उसके हाथ में पायस से भरा दोना आकर गिरा जिसे उसने शिवजी का प्रसाद समझकर ग्रहण कर लिया और उससे वह गर्भवती हो गई तथा महावीर हनुमान को जन्म दिया।' इस सम्बंध में एक कथा इस प्रकार आती है कि– सुवर्चला नाम की एक अत्यन्त रुपसी अप्सरा थी। ब्रह्माजी की सभा में नृत्य करते हुए उसमें नृत्यभंग दोष देख ब्रह्माजी नाराज हो गये और उसे श्राप दिया कि तू गृद्धी हो जा। सुवर्चला के श्रापमुक्त होने का अनुनय करने पर ब्रह्माजी ने उससे कहा कि अयोध्या के महाराजा दशरथ पुत्रेष्टि यज्ञ कर रहे हैं। वे पायस को अपनी पत्नियों में बांटेंगे। उनमें से सुमित्रा के हाथ से पायस छीनर तुम अंजन पर्वत पर जहां अंजना तपस्यारत है उसके हाथ में रख देना, तब तुम श्रापमुक्त हो जाओगी। सुवर्चला नामक गृद्धी ने ऐसा ही किया और यज्ञ मे अग्निदेवता द्वारा दिया गया पायस सुमित्रा के हाथ से छीनकर वह गृद्धी ले उड़ी और अंजन पर्वत पर जाकर जहां अंजनादेवी तपस्या कर रही थीं, उनके हाथों में रख दिया और गृद्धी होने के श्राप से मुक्त होकर पुनः अपने रुप में ब्रह्मलोक चली गयी। सुमित्रा के हाथ से पायस छीना गया देखकर कौशिल्याजी और माता कैकेयी ने अपने–अपने भाग से उन्हें पायस प्रदान किया और इस तरह दो भाग खाने से सुमित्राजी के दो पुत्र श्री लक्ष्मण एवं श्री शत्रुघ्न पैदा हुए। रामचरित मानस में लिखा है कि–

कौसल्या कैकेई हांथ धनि। दीन्ह सुमित्रहि मन प्रसन्न करि।।
एहि विधि गर्भ सहित सब नारी। भई हृदय हरषित सुख भारी।।

यज्ञ के जिस पायस को खाकर महराज दशरथ की रानियां गर्भवती हुई थीं, उसी पायस को ग्रीण कर माता अंजना भी गर्भवती बनीं और भगवान श्रीराम के अंशावतार के रुप में श्री हनुमान का जन्म हुआ। 'आनंद रामायण' में गृद्धी का माता कैकेयी के हाथ से पायस ले जाना वर्णित है–

प्लवंगस्पांज्जनीनाम्नी स्थिता तावच्च खात्तदा
पपात पायसतयः पिण्डो गृध्रीमुखद्रभुविः
यदा नीतस्तु कैकेया कराद्गृध्रया पुरा
ते पिंडं भक्षयामास वानरी ह्यमृतोपमम।।

''किसी समय उस कपि की अंजनी नाम की सत्री वहां बैठी थी। इतने में आकाश से किसी गृद्धी के मुख से छूटकर पायस का एक पिण्ड आ गिरा। यह पिण्ड वही था जो कि पहले कैकेयी के हाथ से एक गृद्धी छीन ले गई थी। उस अमृततुल्य पिण्ड को वानरी ने खा लिया।'' उसी पायस पिण्ड से महा. पराक्रमी श्री हनुमान का जन्म हुआ।

विभिन्न पुराणों में हनुमानजी के जन्म की कथा दी गयी है, जो अलग–अलग घटाओं के द्वारा वर्णित है। 'स्कन्दपुराण' के अनुसार मतंग ऋषि के आदेश को शिरोधार्य करके आक. ाशगंगा तीर्थ में अंजनाजी ने पुत्र प्राप्ति की कामना से बारह वर्ष तक तपस्या की थी। तपस्या से प्रसन्न होकर वायुदेवता ने उन्हें पुत्रवती होने का वरदार दिया, जिससे हनुमानजी का जन्म हुआ। 'ब्रह्माण्ड पुराण' के अनुसार धर्मदेवता ने स्त्री का रुप धारण कर पुत्र कामना रखने वाली अंजना को सा हजार वर्ष तक आकाशगंगा तीर्थ में तप करने पर पुत्र प्राप्ति का आश्वासन दिया था। अंजनाजी द्वारा तपस्या के फलस्वरुप

उनके गर्भ से हनुमानजी का जन्म हुआ था, जो परमवीर एवं परमभक्त रामोपासक के रुप में विख्यात हुए।

श्री हनुमान की जन्मतिथि के सम्बंध में अलग–अलग प्रमाण प्राप्त होते हैं। 'श्री वाल्मीकि रामायण' में श्री हनुमान की जन्मतिथि का उल्लेख नहीं है और न ही 'अध्यात्म रामायण' या 'महाभारत' में उसका उल्लेख है, किन्तु पुराणों के आधार पर कुछ तथ्य मिलते हैं जो परस्पर विरोधी हैं। श्री हनुमान के जन्म के सम्बंध में 'अगस्त्य संहिता' में इस तरह का प्रमाण दिया गया है–

उर्जे कृष्णचतुर्दश्यां भौमे स्वात्यां कपीश्वरः
मेषलग्ने अंजनागर्भात प्रादुर्भूतः स्वयं शिवः।।

'कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी, भौमवार, स्वाती नक्षत्र, मेष लगन में माता अंजनी के गर्भ से स्वयं शिवजी ने कपीश्वर हनुमानजी के रुप में अवतार ग्रहण किया। ''ब्रह्माण्ड पुराण' की एक कथा के अनुसार अंजना ने 'श्रावण मास की एकादशी के दिन श्रवण नक्षत्र में सूर्योदय के समय कानों में कुण्डल और यज्ञोपवीत धारण किए हुए, कौपीन पहने, जिसका रुप, मुख, पूंछ और अधोभाग वानर के समान था, ऐसे सुवर्ण के समान रंग वाले सुंदर पुत्र को जन्म दिया।'

कुछ विद्वान चैत मास की शुक्ल पक्ष एकादशी को हनुमानजी का जन्म मानते हैं–

चैत्रे मासि सिं पक्ष हरिदित्यां मघामिधे।
नक्षत्रे स समत्पन्नो हनुमान रिपुसूदन।।

चैत्र मास, शुक्ल पक्ष, एकादशी तिथि और मघा नक्षत्र में रिपुओं का दमन करने वाले हनुमानजी पैदा हुए। 'आनंद रामायण' में चैत्र मास की पूर्णमासी को हनुमानजी का जन्मदिन माना गया है–

महाचैत्रीपूर्णिमायां समुत्पन्नो अंजनी सुतः।
वदन्ति कल्पभेदेन बुधा इत्यादि केचन।।

लोक आराधना में श्री हनुमानजी जयन्ती मुख्यतः दो ही मनायी जाती हैं– एक तो चेत्र मास की पूर्णिमा को और दूसरी कार्तिक मास की चतुर्दशी को कृष्ण पक्ष अमावस्या के ठीक एक दिन पूर्व नरक चतुर्दशी को।

शास्त्रों में कुछ तिथियों को रिक्ता तिथि माना गया है, उनमें प्रतिपदा, चतुर्थी, नवमी एवं चतुर्दशी हैं। इन तिथियों ने एक कथा के अनुसार एक बार भगवान नारायण से प्रार्थना की कि हमसे क्या चूक या पाप हुआ कि मेरे दिन शुभ कार्य, हवन–पूजन आदि वर्जित है। इस पर भगवान नारायण ने इन तिथियों को भी अत्यन्त महत्वपूर्ण होने का वर दिया। उस वर के फलस्वरुप सभी तिथियां महत्वपूर्ण हो गयीं। यथा प्रतिपदा के दिन नवदुर्गा की उपासना आरंभ हुई व उसमें व्रत रखने व पुण्यकार्य का अक्षय फल घोषित किया गया। चतुर्थी के दिन भगवान गणेश का जन्म हुआ और वह तिथि उपासना व भक्ति की तिथि हो गयी। नवमी के दिन स्वयं नारायण ने

राम रुप में अवतार लिया और रामनवमी भक्तों की उपासना का प्रमुख दिन मान्य हुआ तथा नरक चतुर्दशी के दिन भक्त शिरोमणि हनुमानजी ने अवतार ग्रहण किया और यह तिथि भक्ति और उपासना में शामिल हो गयी।

इस तरह हनुमानजी के जन्म की अत्यन्त अलौकिक कथाएं हैं, जिनमें से यथामति कुछ बातों का ऊपर संक्षेप में अंकन किया गया है। अगर हम जन्म की सम्पूर्ण कथा का तात्विक विवेचन करें तो हमारी अवधारणा बनती है कि भक्तप्रवर हनुमान भगवान शिव के अंश से उत्पन्न शंकर सुवन हैं। स्वयं शिव नहीं। जिस तरह शिव के अन्य पुत्रों श्री गणेश एवं श्री कार्तिकेय की कथा है जो अलौकिक है, उसी तरह श्री हनुमान के भी जन्म की कथा है। यह मत भी निश्चित है कि श्री हनुमान वायुदेवता के औरस पुत्र हैं तथा वानरराज केशरी के क्षेत्रज्ञ पुत्र हैं। एक व्यक्ति तीन पिता का पुत्र कैसे हो सकता, इस शंका का समाधान स्वयं श्री हनुमान की जन्म गाथा है। श्री शिवजी की भी महिमा अद्भुत है, उनके तीनों पुत्रों षडानन, गणेश एवं हनुमान की जन्म कथा, चरित्र व प्रभाव अद्भुत है, अतः इस तथ्य को शिव चरित्र का एक भाग मानकर मान्य कर लेना ही श्रेयस्कर है।

श्री हनुमान का जन्म कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी मंगलवार को हुआ हो या चैत्र शुक्ल एकादशी या पूर्णिमा को? इतना अवश्य है कि उनकी इस जगत में अवतरण की घटना से मानवता का युगों से कल्याण हुआ है और आगे भी होता रहेगा क्योंकि वे भक्तों के संकटमोचन चिरंजीवी व प्रत्यक्ष समर्थ सहायक हैं।

श्रीहनुमान की बाल लीला और पराक्रम

श्री हनुमान के जन्म कुछ काल पश्चात ही किए गए

कार्यों का अत्यन्त रोमांचकारी चित्र सामने आता है। 'वाल्मीकि रामायण' के किष्किन्धाकाण्ड तथा उत्तरकाण्ड एवं 'आनंद रामायण' के सारकाण्ड में हमें श्री हनुमान के द्वारा सम्पादित अलौकिक कार्यों का ज्ञान होता है। किष्किन्धाकाण्ड में ऋक्षराज जामवन्त ने स्वतः श्री हनुमान से उनके बाल्यकाल की लीला व पराक्रम का वर्णन इस प्रकार किया है– 'बाल्यावस्था में एक विशाल वन के भीतर एक दिन उदित हुए सूर्य को देखकर तुमने समझा कि यह भी कोई फल है अतः उसे लेने के लिए तुम सहसा आकाश में उछल पड़े। महाक. पि! तीन सौ योजन ऊंचे जाने के बाद सूर्य के तेज से आक्रान्त होने के बाद भी तुम्हारे मन में खेद या चिन्ता नहीं हुई। कपिवर! अन्तरिक्ष में जाकर अब तुरन्त ही तुम सूर्य के पास पहुंच गये तब इन्द्र ने कुपित होकर तुम्हारे ऊपर तेज से प्रकाशित वज्र का प्रहार किया। उस समय उदयगिरि के शिखर पर तुम्हारे हनु ःठोड़ीः का बायां भाग वज्र की चोट से खंडित हो गया, तभी से तुम्हारा नाम हनुमान पड़ गया।'

'वाल्मीकि रामायण' के उत्तरकाण्ड में महर्षि अगस्त्य ने भगवान श्रीराम को हनुमानजी के बाल्य पराक्रम की अद्भुत कथा स्वतः श्री हनुमान की उपस्थिति में सुनाई, जो इस प्रकार है– 'अंजना ने जब इनको जन्म दिया, उस समय इनकी अंग कान्ति जाड़े में पैदा होने वाले धान के अग्रभाग की भांति पिंगल वर्ण की थी। एक दिन माता अंजना फल लाने के लिए आश्रम से निकलीं और गहन वन में चली गईं। उस समय माता से बिछुड़ जाने और भूख से अत्यन्त पीडित होने के कारण शिशु हनुमान उसी तरह जोर–जोर से रोने लगे जैसे पूर्वकाल में सरकण्डों के वन के भीतर कुमार कार्तिकेय रोये थे। इतने में ही इन्हें जवाकुसुम के समान लाल रंग वाले सूर्यदेव उदित होते हुए दिखायी दिये। हनुमानजी ने उन्हें कोई फल समझा और वे उस फल के लोभ से सूर्य की ओर उछले। बालसूर्य की ओर मुख किये मूर्तिमान बालसूर्य के समान बालक हनुमान बालसूर्य को पकड़ने की इच्छा से आक. ाश में उड़ते हुए चले जा रहे थे। शैशवावस्था में जब हनुमानजी इस तरह उड़ रहे थे, उस समय इन्हें देखकर देवताओं, दानवों तथा यक्षों को बड़ा विस्मय हुआ। वे सोचने लगे कि यह वायु का पुत्र जिस प्रकार ऊंचे आकाश में वेगपूर्वक उड़ रहा है ऐसा वेग न तो वायु में है न गरुड़ में है और न मन में ही है। यदि बाल्यावस्था में ही इस शिशु का ऐसा वेग और पराक्रम है तो यौवन का बल पाकर इसका वेग कैसा होगा? अपने पुत्र को सूर्य की ओर जाते देख उसे दाह के भय से बचाने के लिए उस समय वायुदेव भी बर्फ के ढेर की भांति शीतल होकर उसके पीछे–पीछे चलने लगे। इस प्रकार बालक हनुमान अपने और पिता के बल से कई सहस्त्र योजन आकाश को लांघते चले गये और सूर्यदेव के समीप पहुंच गये। सूर्यदेव ने यह सोचकर कि अभी यह बालक है, इसे गुण–दोष का ज्ञान नहीं है और इसके अधीन दूवताओं का भी बहुत–सा भावी कार्य है, इन्हें जलाया नहीं। जिस दिन हनुमानजी सूर्यदेव को पकड़ने के लिए उछले थे उसी दिन राहु सूर्यदेव पर ग्रहण लगाना चाहता था। हनुमानजी ने सूर्य के रथ के ऊपरी भाग में जब राहु का स्पर्श किया, तब चन्द्रमा और सूर्य का मर्दन करने वाला राहु भयभीत हो वहां से भाग खड़ा हुआ। सिंहिका का वह पुत्र रोष से भरकर इन्द्र के भवन में गया और देवताओं से घिरे हुए इन्द्र के सामने भौंहें टेढ़ी करके बोला– बल और वृत्तासुर का वध करने वाले वासव! आपने चन्द्रमा और सूर्य को मुझे अपनी भूख को दूर करने के साधन के रुप में दिया था, किन्तु अब आपने उन्हें दूसरे के हवाले कर दिया है। ऐसा क्यों हुआ? आज पर्व –अमावस्या– के समय मैं सूर्यदेव को ग्रस्त करने की इच्छा से गया था, इतने में ही दूसरे राहु ने आकर सहसा सूर्य को पकड़ लिया। राहु की यह बात सुनर देवराज इन्द्र घबरा गये और सोने की माला पहने अपना सिंहासन छोड़कर उठ खड़े हुए। फिर कैलाश–शिखर के समान उज्जवल, चार दांतों से विभूषित, मद की धारा बहाने वाले, भांतिभांति के श्रृंगार से युक्त, बहुत ही ऊंचे और सुवर्णमयी धण्टा के नादरुप अट्टहास करने वाले गजराज ऐरावत पर आरुढ़ होकर देवराज इन्द्र राहु को आगे करके उस स्थान पर गये, जहां हनुमानजी के साथ सूर्यदेव विराजमान थे। इधर राहु इन्द्र को छोड़कर बड़े वेग से आगे बढ़ गया। इसी समय पर्वत शिखर के समान आकार वाले दौड़ते हुए राहु को हनुमानजी ने देखा, तब राहु को ही फल के रुप में देखकर बालक हनुमान सूर्यदेव को छोड़ उस सिंहका पुत्र को ही पकड़ने के लिए पुनः आकाश में उछले। सूर्य को छोड़कर अपनी ओर धावा करने वाले इन वानर हनुमान को देखते ही राहु जिसका मुखमात्र ही शेष था, पीछे की ओर मुड़कर भागा। उस समय सिंहिका पुत्र राहु अपने रक्षक इन्द्र से ही अपनी रक्षा के लिए कहता हुआ भय के मारे बारम्बार इन्द्र–इन्द्र की पुकार मचाने लगा। चीखते हुए राहु के स्वर को, जो पहले का पहचाना हुआ था, सुनकर इन्द्र बोले– डरो मत, मैं इस आक्रमणकारी को मार डालूंगा। तत्पश्चात ऐरावत को देखकर इन्होंने उसे भी एक विशाल फल समझा और उस गजराज को पकड़ने के लिए ये उसकी ओर दौड़े। ऐरावत को पकड़ने की इच्छा से दौड़ते हुए हनुमानजी का रुप दो घड़ी के लिए इन्द्र और अग्नि के समान प्रकाशमान एवं भयंकर हो गया। बालक हनुमान को देखकर शतीपति इन्द्र को अधिक क्रोध नहीं हुआ, फिर भी इस प्रकार धावा करते हुए बालक वानर पर उन्होंने अपने हाथ से छूटे हुए वज्र के द्वारा प्रहार किया। इन्द्र के वज्र की चोट खाकर ये एक पहाड़ पर गिरे। वहां गिरते समय इनकी बांयी ठुड्डी टूट गई।'

'आनंद रामायण' में श्री हनुमान के बाल पराक्रम की कथा इस

प्रकार है– 'वे हनुमान बाल्यकाल में ही सूर्य को देख तथा उन्हें पका फल समझकर उसको लेने की इच्छा से लीलापूर्वक ऊपर हो उछले। उस समय मारुति वायुवेग से पांच सौ योजन ऊवा उठ गये थे। हे रघुत्तम! उसी दर्श–अमावस्या– के दिन राहु भी ग्रसने के लिए सूर्य के पास गया, किन्तु उन्हें पकड़ने की इच्छा से खड़े हनुमान जी को देखा, तब राहु डरा और सूर्य को छोड़कर इन्द्र के पास जा पहुंचा। शतीपति इन्द्र से राहु बोला– अब मैं आपको ही सताऊंगा, क्योंकि पूर्वकाल में आपने मुझे सताने के लिये सूर्य को दिया था परन्तु उसमें इस समय विघ्न उपस्थिति हो गया है अतः उसका आप निवारण करें, नहीं तो मैं आपको ही दुःख दूंगा। इस प्रकार राहु के कथनानुसार इन्द्र गज पर सवार होकर देवताओं के साथ सूर्य के पास गये तो वहां उनके सामने हनुमान को खड़ा देखा। तत्काल इन्द्र ने उनके ऊपर वज्र प्रहार किया। वज्र के आघात से हनुमान नीचे गिरि कन्दरा में जा गिरे और उनकी ठुड्डी टेढ़ी हो गयी, जिससे कि उनका नाम हनुमान पड़ा। उनका यह नाम सर्वत्र प्रसिद्ध हो गया।'

'वाल्मीकि रामायण' की तरह यह 'आनंद रामायण' की कथा श्रीराम को महर्षि अगत्स्यजी ने ही सुनायी थी। इस वर्णित घटनाक्रम से श्री हनुमान के बालरुप का अद्भुत शौर्य सामने आता है, जिसके उत्तरोत्तर वृद्धि के कारण ही वे आगे 'महावीर विक्रम बजरंगी' के विभूषणों से विभूषित हुए। श्री हनुमान चालीसा में लिखा है–

जुग सहस्त्र जोजन पर भानू
लील्यो ताहि मधुर फल जानू।।

हनुमानाष्टक में श्री हनुमानजी द्वारा सूर्यमंडल को पकड़ने का प्रमाण मिलता है। रावण के पूछने पर कि राम की ध्वजा में यह कौन बैठा है, उसका मंत्री लोहिताक्ष उत्तर देता है– 'हे स्वामिन! क्रीड़ा ही करके समुद्र को लांघने वाला, जानकी वियोग में शुष्क हुआ है मन जिनका, ऐसे कौशिल्याकुमार श्री रामचन्द्र की दीनता को नष्ट करने में चतुर, सूर्यमण्डल को पकड़ने वाला, राक्षसपति रावण की समस्त लंका को जलाने वाला और लक्ष्मणजी की प्राण रक्षा के लिये द्रोणाचल पर्वत को उखाड़ने वाला पवनपुत्र हनुमान ध्वजा में बैठा है।'

श्री हनुमानाष्टक में लिखा है–

बाल समय रवि भक्षि लियो तब तीनहु लोक भयो अंधियारा
ताहि सो त्रास भई जग को यह संकट काहु सो जात न टारो
देवन्ह आनि करी विनती तब छाड़ि दियो रवि कष्ट निवारो
को नहिं जानत है जग में कपि संकट मोचन नाम तिहारो।।

बचपन में ही जिनका तेज और प्रताप प्रतापियों में अग्रगण्य रहा है, ऐसे परम यशस्वी रुद्रांश पवनकुमार की विभूति का वर्णन करना सभी के लिए पूर्णतया अगम्य ही है।

आरती श्री विष्णु जी की

ॐ जय जगदीश हरे, स्वामी! जय जगदीश हरे।
भक्त / दास जनों के संकट, दास जनों के संकट
क्षण में दूर करे॥ ॐ जय जगदीश हरे...

जो ध्यावे फल पावे, दु:ख विनसे मन का,
स्वामी दु:ख विनसे मन का।
सुख सम्पत्ति घर आवे, कष्ट मिटे तन का॥
ॐ जय जगदीश हरे...

मात-पिता तुम मेरे, शरण गहूँ मैं किसकी,
स्वामी शरण गहूँ मैं किसकी।
तुम बिन और न दूजा, प्रभु बिन और न दूजा
आस करूँ मैं जिसकी॥
ॐ जय जगदीश हरे...

तुम पूरण परमात्मा, तुम अन्तर्यामी,
स्वामी तुम अन्तर्यामी।
पारब्रह्म परमेश्वर, तुम सबके स्वामी॥
ॐ जय जगदीश हरे...

तुम करुणा के सागर, तुम पालन-कर्ता,
स्वामी तुम पालन-कर्ता।
मैं मूरख खल कामी, मैं सेवक तुम स्वामी,
कृपा करो भर्ता॥
ॐ जय जगदीश हरे...

शेष अगले पृष्ठ पर...

तुम हो एक अगोचर, सबके प्राणपति,
स्वामी सबके प्राणपति।
किस विधि मिलूँ दयामय, तुमको मैं कुमति॥
ॐ जय जगदीश हरे...

दीनबन्धु दुखहर्ता, तुम ठाकुर मेरे,
स्वामी तुम रक्षक मेरे।
अपने हाथ उठाओ, अपनी शरण लगाओ,
द्वार पड़ा मैं तेरे॥
ॐ जय जगदीश हरे...

विषय-विकार मिटाओ, पाप हरो देवा,
स्वामी कष्ट हरो देवा।
श्रद्धा-भक्ति बढ़ाओ, श्रद्धा-प्रेम बढ़ाओ,
सन्तन की सेवा॥
ॐ जय जगदीश हरे...

तन मन धन सब है तेरा,
स्वामी सब कुछ है तेरा।
तेरा तुझको अर्पण, क्या लागे मेरा॥
ॐ जय जगदीश हरे...

श्री जगदीश जी की आरती, जो कोई नर गावे,
स्वामी जो कोई नर गावे।
कहत शिवानन्द स्वामी, सुख संपत्ति पावे॥
ॐ जय जगदीश हरे...

ॐ जय जगदीश हरे, स्वामी! जय जगदीश हरे।
भक्त जनों के संकट, क्षण में दूर करे॥

वेद पुराणों में है जीवन में तरक्की और सुख पाने के उपाय, आप भी जानें...

वेद और पुराण में क्या अंतर है ? दोस्तों, आज मैं आपको बताने वाला हूँ की हिंदू धर्म में जो सबसे बड़ी धर्म ग्रन्थ वेद और पुराण है, उसमें क्या क्या अंतर है मतलब उनमें कहा क्या ज्ञान हमें बताये गए है। भारत देश और वेद एवं पुराण शुरू से ही एक दूसरे से सम्बंधित है, फिर भी हममें से अधिकांश लोग वेद और पुराणों में क्या भेद है यह नहीं जानते हैं।

वेद न केवल भारत अपितु सम्पूर्ण संसार के सबसे प्राचीन ग्रन्थ हैं, और संसार के सबसे पुराने दस्तावेज भी हैं। वेदों की उल्लेख को वैज्ञानिकों ने भी सही माना है। ऐसा कहा जाता है की वेदों से विश्व के अन्य धर्मों की उत्पत्ति हुई। और लोगों ने अपनी अपनी भाषा और अपने ढंग से वेदों ज्ञान को अपने जीवन में उतारा। वेद शब्द के उत्पत्ति संस्कृत की विद शब्द से हुई है। जिसका अर्थ है ज्ञान। इसलिए वेदों को ज्ञान के ग्रन्थ कहा जाता है। विद्या, विद्यान आदि शब्दों की उत्पत्ति भी यही से हुई है। वेदों को श्रुति भी कहाँ जाता है, क्यूंकि यह ज्ञान ईश्वर द्वारा ऋषि-मुनियों को सुनाया गया था। उस काल में वेद लिखित रूप में नहीं थे, इसलिए इस ज्ञान को स्मृति के रूप में ही याद रखा गया था। यह स्मृति और बुद्धि पर आधारित ग्रन्थ था। वैसे तो वेदों को कुछ ह?ार वर्ष पुराना माना गया है, जबकि असल में वेद 1 अरब 97 करोड़ वर्षो से भी अधिक प्राचीन है।

वर्त्तमान में वेदों को हम चार नामों से जानते हैं ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद

इनके उपवेद हैं आयुर्वेद, गंधर्ववेद, धनुर्वेद, स्थापत्यवेद, परन्तु ऐसा कहाँ जाता है की पहले केवल एक ही वेद था। द्वापर युग के समाप्ति के पूर्व तक वेद की संख्या एक ही थी। बाद में लोगों को समझाने हेतु इन्हे सरल बनाने के लिए वेदों को चार भागों में विभाजीत किया गया।

ऋग्वेद को धर्म, यजुर्वेद को मोक्ष, सामवेद को काम, अथर्ववेद को अर्थ इसी तरीकेसे अलग अलग भागो में वेदों को भाग करा गया था। और इसी आधार पर धर्मशास्त्र, मोक्षशास्त्र, कामशास्त्र और अर्थशास्त्र भी लिखे गए। वेदों में मनुष्य जीवन से सम्बंधित हर बात उल्लेख है। उदहारण के लिए आप जान लीजिये की वेदों में किन का उल्लेख है वेदो में आयुर्वेद, ख्वगोल, भूगोल, ब्रह्माण्ड, ज्योतिष, रसायन, गणित, धार्मिक नियम, भौतिक विज्ञान, प्रकृति, इतिहास, विधि-विधान आदि के विषय में सम्पूर्ण जानकारी हैं। ऐसा माना जाता है की अग्नि, वायु और सूर्य देव ने तपस्या करके ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद का ज्ञान प्राप्त किया। इसलिए इन वेदों को अग्नि, वायु और सूर्य से जो ?ा जाता है।

वही अथर्ववेद को अंगिरा से जो ?ा जाता है।

ऋग्वेद ये सबसे पहला और सबसे प्राचीन वेद है जिसमें 10 अध्याय, 1028 सुत्क और 11000 ह?ार मंत्र हैं। इसमें देवताओँ का आवाहन कैसे किया जाये वो सभी मंत्र है। साथ चिकित्सा, भौगलिक स्तिति, देवताओँ की प्रार्थना, और देवलोक में देवताओँ की स्तिति के अतिरिक्त अनेक बातों का वर्णन मिलता है। यजुर्वेद यजुर्वेद की दो भाग है शुक्ल और कृष्ण। इस वेद में यज्ञ की वास्तविक प्रक्रिया की मंत्र उल्लेख हैं। सामवेद इसमें ऋग्वेद की रचनाएँ गीत रूप में हैं, इसमें लगभग सभी मंत्र ऋग्वेद से ही है। इसमें अग्नि सविता और देवताओं की विषय में उल्लेख मिलता है। अथर्ववेद ङ्क इसमें प्राकृतिक औषोधि अर्थात जड़ीबूटी, आयुर्वेद, रहस्यमयी विद्याओं आदि का उल्लेख है।

पुराणों की संख्या कुल मिलाकर 18 है। ऐसी भी मान्यता है की वेदों को लिखित रूप में लाने के बाद भी सभी श्लोकों में लगभग 100 करो? श्लोक बाकि रह गए थे। इन श्लोको का संकलन वेदव्यास द्वारा किया गया, जिनमें से 18 संकलनो को पुराण कहा गया। इसके बाद लगभग 18 उपपुराण लिखे गए और इनके अतिरिक्त बाकि रहे श्लोकों को लेकर 28 उपपुराण और भी लिखे गए। मुख्य 18 पुराणों में 6 पुराण ब्रह्मा, 6 विष्णु और 6 महेश्वर को समर्पित है। भगवान विष्णु को समर्पित 6 पुराणों के नाम है

विष्णु पुराण, नारद पुराण, वामन पुराण, मत्स्य पुराण, गरु पुराण, श्रीमद् भागवत पुराण

ब्रह्मा जी को समर्पित पुराण है

ब्रह्म पुराण, भविष्य पुराण, अग्नि पुराण

ब्रह्मवैवर्त पुराण, ब्रह्माण्ड पुराण, पद्म पुराण

महेश्वर अर्थात शिव जी को समर्पित पुराण है

शिव पुराण, लिंग पुराण, कूर्म पुराण, मार्कण्डेय पुराण, स्कन्द पुराण, वाराह पुराण

अब जानते है की वेद और पुराण में क्या अंतर है? जैसा की मैंने बताया की वेदों में मानव जीवन से सम्बंधित हर बात का वर्णन है, वेदों में श्लोकों के माध्यम से नियम बताये गए हैं की जीवन में हर कार्य व्यवस्थित ढंग से कैसे किया जाये। परन्तु कलयुग में मनुष्य के लिए वेदों को समझना बहुत कठिन है। प्रत्येक तथ्य के पीछे क्या धारणा और मंतव्य है ये हमारे लिए समझना बहुत मुश्किल है। इसलिए पुराणों में वेदो की नियमों को कहानियों के माध्यम से समझाने का प्रयास किया गया है। कहानी और इतिहास के माध्यम से हम बेहतर ढंग से समझ सकते हैं।

कब मनेगा राष्ट्रभाषा अमृत महोत्सव ?

देश एक और हिंदी दिवस मना रहा है। कहने को भारत हिंदी भाषी ही है पर, कड़वी सच्चाई यही है कि हिंदी आज भी संवैधानिक रूप से हमारी राष्ट्रभाषा नहीं है । भारत में भाषाओं का वैविध्य देखने में आता है । देश में एक दो नहीं कई भाषाएं एवं लिपियां हैं और विविधता के बीच राजनीति इतनी कि हिंदी को स्वीकार करने के लिए देश का सारा भूभाग तैयार नहीं है । अब इसे राजनीति का असर कहें या कुछ और पर कुल मिलाकर असलियत यह है कि इस विवाद के चलते हुए आज तक इस देश को अपनी कोई राष्ट्रभाषा नहीं मिल पाई है।

नहीं मिला हिंदी को अमृत = हर वर्ष सितंबर के महीने में कभी हिंदी सप्ताह तो कभी हिंदी पखवाड़े मनाए जा रहे हैं और कामना की जा रही है कि हिंदी भारतवर्ष की राष्ट्रभाषा बन जाए मगर आजादी के 75 में वर्ष में प्रवेश करने के बाद भी हिंदी का अमृत महोत्सव देवनागरी लिपि एवं हिंदी के लिए तो मनता दिखाई नहीं दे रहा है । कितनी विचित्र बात है की आज तक भारत अपनी एक राष्ट्रभाषा नहीं चुन पाया है। ऐसी हास्यास्पद स्थिति दुनिया के किसी भी देश की शायद ही हो । छोटे-छोटे से देश भी अपनी राष्ट्रभाषा के साथ गर्व से उस में कार्य करके प्रगति कर रहे हैं पर हम अपनी ही भाषा हिंदी को उसके हिस्से का अमृत नहीं दिला पाए।

आंकड़ों की दृष्टि से देखें तो देश में 129 भाषाएं संविधान की आठवीं सूची में दर्ज हैं, आजादी के ठीक बाद से ही यह निर्णय लिया गया था कि हिंदी देश की राष्ट्रभाषा होगी और आजादी के 15 वर्षों के भीतर ही धीरे-धीरे अंग्रेजी को हटाकर देवनागरी लिपि कि हिंदी को राष्ट्रभाषा के स्थान पर स्थापित किया जाएगा मगर यह संकल्प आज आजादी के 75 वर्ष के आने तक भी पूर्ण नहीं हो पाया है और न ही निकट भविष्य में भी हिंदी के राष्ट्रभाषा बनाने का सपना पूरा होता दिखाई नहीं दे रहा है।

क्या हमारी अपनी एक राष्ट्रभाषा नहीं होनी चाहिए ? और हिंदी के अतिरिक्त क्या कोई दूसरी भाषा भारत राष्ट्र में राष्ट्रभाषा का स्थान ले सकती है ? बहुत स्वाभाविक उत्तर है नहीं । मगर हिंदी को राष्ट्रभाषा का दर्जा देने की बात जब भी उठी तब ही देश के एक विशेष हिस्से से उसके विरोध के स्वर मुखरित होते चले गए और क्षुद्र स्वार्थों वाली क्षेत्रीय राजनीति हिंदी का राष्ट्रभाषा होने का हक बड़ी चतुराई से लील गई । उसी का परिणाम सामने है । देशभर में सबसे अधिक बोली पढ़ी व लिखे जाने वाली हिंदी भाषा जिसे दुनिया भर में भर मैंडरिन के बाद दूसरा स्थान प्राप्त है अपने ही देश में राष्ट्रभाषा होने के अधिकार सुख से वंचित है।

आंकड़ों की दृष्टि से देखें तो देश में 129 भाषाएं संविधान की आठवीं सूची में दर्ज हैं, आजादी के ठीक बाद से ही यह निर्णय लिया गया था कि हिंदी देश की राष्ट्रभाषा होगी और आजादी के 15 वर्षों के भीतर ही धीरे-धीरे अंग्रेजी को हटाकर देवनागरी लिपि कि हिंदी को राष्ट्रभाषा के स्थान पर स्थापित किया जाएगा मगर यह संकल्प आज आजादी के 75 वर्ष के आने तक भी पूर्ण नहीं हो पाया है और न ही निकट भविष्य में भी हिंदी के राष्ट्रभाषा बनाने का सपना पूरा होता दिखाई नहीं दे रहा है।

कोई राष्ट्रभाषा ही नहीं = विश्व के हर बड़े मंच पर आज भारत की आवाज़ की महत्ता बढ़ी है मगर हम खुद भी नहीं जानते कि हमारी आवाज़ क्या है ? ऐसा इसलिए कहा जा रहा है क्योंकि आवाज़ के लिए अपनी एक भाषा का होना बेहद जरूरी है और आज़ादी के 74 साल पूरे होने के बाद भी हमारी अधिकारिक रूप से कोई राष्ट्र-भाषा न होना हमारी कमजोरी है ।

संसद की कार्यवाही के लिए हमने अनेक भाषाएं चुनी हैं , संविधान की 26 वीं अनुसूची में कई क्षेत्रीय भाषाएं दर्ज हैं पर आज भी दासता की प्रतीक अंग्रेजी ही हमारी अधिकृत भाषा बनकर सामने आई है। भले ही उत्तर भारत के निवासी भावनात्मक रूप से देवनागिरी हिन्दी को राष्ट्रभाषा का दर्जा देते हैं पर संविधान उसे ऐसा कोई दर्जा नहीं देता हैऔर वह भी दूसरी क्षेत्रीय भाषाओं की तरह ही एक भाषा मात्र है जिसे राज्य व केन्द्र सरकारें अपने काम काज में लाएं या न लाएं उनकी मर्जी पर है ।

देशभक्ति की अमर गाथा...

हमारा रिश्ता अपने देश, अपनी मिट्टी से होता है, देशभक्त होना ही चाहिए...

हम यहां पैदा होते हैं, इस देश की बहती हुई नदियों का पानी पीते हैं, देश की मिट्टी से उत्पन्न फल सब्जियां अनाज खाते हैं। इस भोजन के भरण पोषण द्वारा ही हमारा शारीरिक मानसिक विकास होता है, हम परिपक्त होते हैं और मजबूत बनते हैं, संक्षेप में कहें तो इस मिट्टी से ही हम बने हैं और हमारे शरीर का कण-कण इस देश की मिट्टी, हवा, पानी द्वारा ही बना है, तब तो हमें कोटि-कोटि धन्यवाद का भाव रखना चाहिए अर्थात प्रेम भावना भी होनी चाहिए...

देश भक्ति का अर्थ होता है ऐसी स्थिति या ऐसा एहसास जिसमें एक व्यक्ति अपने देश को तन मन धन से प्रेम करता है। वह प्रेम किसी बंधन से नहीं बंधा होना चाहिए। उस प्रेम की कोई सीमा नहीं होती है, वह पूर्ण रूप से पवित्र होता है बिना किसी मिलावट के। अब प्रश्न यह आता है कि देश भक्ति का एहसास क्यों होना चाहिए, होना भी चाहिए या नहीं ! इसके क्या फायदे, क्या नुकसान है तो हां बिल्कुल देशभक्ति का एहसास होना चाहिए, बिल्कुल होना चाहिए, इसमें तो कोई दो राय ही नहीं है । बात आती है फायदों पर तो क्या असल में हमें देश भक्ति के भाव में फायदे ढूंढने चाहिए !! अगर सच में कोई व्यक्ति देश भक्ति के भाव में फायदे ढूंढता है तो सच में धिक्कार है उसकी आत्मा पर, क्योंकि देश भक्ति तो वास्तव में प्रेम है और प्रेम में फायदा नुकसान नहीं देखा जाता है । आपके माता-पिता ने आपको पाल पोस कर इतना बड़ा किया है, क्या आप उनसे प्रेम करने में फायदा या नुकसान ढूंढ सकते हैं ? नहीं ना, यह तो बिल्कुल अमानवीय बात होगी।

मां-बाप से तो प्रेम का कोई मोल ही नहीं है, हम तो उनके द्वारा किए हुए इतने उपकार उतार ही नहीं सकते हैं, उतारने की सोच भी नहीं सकते हैं; ठीक उसी प्रकार हमारा रिश्ता अपने देश, अपनी मिट्टी से होता है और इसके प्रताई देशभक्ति होना भी चाहिए, तभी तो कहते हैं की धरती हमारी मां है और मां से तो अटूट बेमतलब का प्रेम होता ही है। फिर भी अगर पूछते हैं तो अपने देश से प्रेम क्यों, क्या वजह है देशभक्ति का, किन वजहों से किसी व्यक्ति को अपने देश से प्रेम होता है, तो उसका उत्तर यह होगा - हम यहां पैदा होते हैं, इस देश की बहती हुई नदियों का पानी पीते हैं, देश की मिट्टी से उत्पन्न फल सब्जियां अनाज खाते हैं। इस भोजन के भरण पोषण द्वारा ही हमारा शारीरिक मानसिक विकास होता है, हम परिपक्व होते हैं और मजबूत बनते हैं; संक्षेप में कहें तो इस मिट्टी से ही हम बने हैं और हमारे शरीर का कण-कण इस देश की मिट्टी, हवा, पानी द्वारा ही बना है; तब तो हमें कोटि-कोटि धन्यवाद का भाव रखना चाहिए अर्थात प्रेम भावना भी होनी चाहिए।

इसके अलावा हम देश की संस्कृति में जो वरीयता है उसका आनंद लेते हैं, देश के विभिन्न भागों में आप जाए तो भिन्न-भिन्न प्रकार के लोग पाएंगे, अलग-अलग बोली तरह तरह के व्यंजन हर जगह हर क्षेत्र हर प्रांत में अलग आबोहवा, हर जगह के अलग संस्कार, इतिहास ङ्क यही सब तो अमूल्य है, कहने का मतलब है कि आप इन चीजों का मोल नहीं लगा सकते हो, और यही सब तो हमारे चरित्र के सामाजिक विकास के लिए लाभदायक है, इन्हीं सब का तो हम आनंद लेते हैं, यही सब तो आंखों की ठंडक है और दिल का सुकून है। फिर इन सबके उपरांत देश हमें अलग-अलग भिन्न-भिन्न प्रकार के प्रबंध देता है, ताकि हम अपने हित में कार्य कर सकें, हमें रोजगार के अवसर देता है, हमें आजादी देता है, जो स्वतंत्रता आप अपने देश में महसूस कर सकते हैं वैसे आप कहीं और विदेश में महसूस नहीं कर सकते हैं।

इस भाव का मूल्यांकन ही नहीं है, आप इस एहसास को किसी तरा?ू में तोल ही नहीं सकते हैं, यह मुमकिन ही नहीं। हमें अलग अलग सेवा नीतियों में छूट मिलती है, सरकार हमारे लिए अलग-अलग प्रकार की सुविधाएं मुहैया कराती है, ताकि देश के नागरिक को जीवन व्यापन में कठिनाई न हो । सरकार द्वारा अलग-अलग कानून तथा नीतियां बनाई गई होती है ताकि देश के सभी नागरिक, चाहे वह ऊंचे तबके का हो या अल्पसंख्यक हो, सभी को आसानी रहे, यही कोशिश रहती है कि किसी भी विशेष वर्ग को बहुत कठिनाइयों का सामना ना करना पड़े। देश की सरकार द्वारा ही शिक्षा के नियम कानून भी बनाए हैं, यह कानून नियम उपयोगकर्ता तथा उपभोगकरर्ता के हित में कार्य करने के लिए बनाए जाते हैं। देश में शिक्षा का प्रबंध होने के कारण ही हम सुविधाजनक तरीके से शिक्षा ग्रहण करते हैं, शिक्षित होते हैं और फिर उसी शिक्षा के ज्ञान द्वारा हम नौकरी करने लायक होते हैं, अपनी आजीविका का प्रबंध करने हेतु, हम सक्षम हो पाते हैं, शिक्षा से ही हम काबिल बनते हैं और इसी से हमारी रोजी-रोटी चलती है, तो इन सब बातों का यही तात्पर्य है कि देश प्रेम अटूट होना चाहिए और बेमतलब होना चाहिए।

योग द्वारा शरीर, मन और मस्तिष्क को पूरी तरह से स्वस्थ रखा जा सकता है...

याग एक प्राचीन भारतीय जीवन-पद्धति है. इसे ही अगर दूसरे शब्दों में कहे तो योग सही तरह से जीने का विज्ञान है. जिसमें शरीर, मन और आत्मा एक साथ आ जाते हैं. योग शद?द का अर्थ होता है, 'बांधना'. योग शब्द संस्कृत के एक शब्द 'युज' से बना है. 'युज' का मतलब होता है, जुड़ना. योग के द्वारा शरीर, मन और मस्तिष्क को पूरी तरह से स्वस्थ रखा जा सकता है. तीनों के स्वस्थ रहने पर ही आप खुद को स्वस्थ महसूस करते हैं. योग से आप को सबसे ज?यादा लाभ पहुंचाता है बाहरी शरीर पर, जिसके बाद योग का लाभ आप के शरीर के बाकि हिस्सों में दिखता है. योग, हमारे भारतीय ज्ञान की पांच हजार वर्ष पुरानी शैली है. लोग योग को केवल शारीरिक व्यायाम ही मानते हैं, जहाँ लोग फिर शरीर को मोड़ते, मरोड़ते, खिंचते हैं. यह वास्तव में केवल मनुष्य के मन और आत्मा की अनंत क्षमता का खुलासा करने वाले इस गहन विज्ञान के सबसे योग के विज्ञान में जीवन शैली का पूरा सार आत्मसात किया गया है. योग के जरिए बीमारियों को तो दूर किया ही जा सकता है लेकिन शरीरिक और मानसिक तकलीफों से भी दूर किया जा सकता है. योग प्रतिरक्षा प्रणाली को मजबूत बनाकर जीवन में नई ऊर्जा देता करता है. योग शरीर को शक्तिशाली और लचीला बनाए रखने में मदद भी करता है.

आप को बता दें ऐसा नहीं है. यह चारों योग के मार्ग अलग-अलग नहीं हैं. बल्कि प्रत्येक मार्ग एक-दूसरे से अति निकट रूप में है. जब हम परमात्मा का विचार करते हैं और अपने साथी मानवीय और प्रकृति के प्रति प्रेम में होते हैं, तब हम भक्तियोगी होते हैं. जब हम अन्य लोगों के निकट होकर उनकी सहायता करते हैं तब हम कर्मयोगी होते हैं. जब हम ध्यान और योगाभ्यास करते हैं तब राजयोगी होते हैं और जब हम जीवन का अर्थ समझते हैं और साथ ही सत्य की खोज में आगे बढ़ते हैं तो हम ज्ञानयोगी होते हैं.राज योग को अष्टांग योग भी कहते हैं. इसमें आठ अंग है जो इस प्रकार हैञ्यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारण, एकाग्रता और समाधि. इस योग में आसन योग को अधिक स्थान दिया जाता है क्योंकि यह क्रिया राज योग की प्राथमिक क्रिया होने के साथ-साथ सरल भी है. यह एक ऐसा योग है, जिसमें कोई धार्मिक प्रक्रिया या मंत्र आदि नहीं है. इस योग को कहीं भी और किसी भी वक्त किया जा सकता है. कर्म योग क्या होता है

'कर्म' शब्द का अर्थ होता है क्रिया यानि? काम करना. कोई भी मानसिक या शारीरिक क्रिया कर्म कहलाता है. कर्म योग में सेवा भाव निहित है. कर्म योग के अनुरूप आज वक्त में जो हम पा रहे है जो हमें मिला है वह हमारे भूतकाल के कर्मो का ही फल है, इसलिए यदि एक मनुष्य अपने भविष्य को अच्छा बनाना चाहता है तो उसे वर्तमान समय में ऐसे कर्म करने होंगे. जिससे भविष्य काल शुभ फल प्रदान करने वाला बने. कर्म योग खुद के कार्य पूर्ण करने से नहीं बल्कि दूसरों की सेवा करने से बनता है. साथ ही जो कुछ हम करते, कहते या फिर सोचते हैं.

भक्ति योग क्या होता ह

भक्ति का अर्थ होता है, प्रेम और ईश्वर के प्रति निष्ठा, सृष्टि के प्रति प्रेम और निष्ठा, सभी प्राणियों के प्रति सम्मान और उनका संरक्षण करना. भक्तियोग का अभ्यास हर कोई कर सकता है, फिर वो चाहे छोटा हो या बड़ा व्यक्ति. चाहे फिर वो किसी भी धर्म का व्यक्ति क्यों न हो. भक्ति योग का मार्ग हमें अपने उद्देश्य की ओर सीधा और सुरक्षित पहुंचाने में मदद करता है. दूसरे शब्दों में कहा जाए तो भक्ति योग उस परमेश्वर इकाई की और ध्यान केन्द्रित करने का वर्णन करता है जो इस संसार के रचियता है. **ज्ञान योग सबस व ठिन :** योग है जिसमें बुद्धि को विकसित किया जाता है. ज्ञान योग का मुख्य कार्य जातक को ग्रंथों के अध्ययन द्वारा और मौखिक रूप से बुद्धि को ज्ञान के मार्ग की और अग्रसर करना है. ज्ञान योग वह मार्ग है जहां अन्तर्दृष्टि, अभ्यास और परिचय के माध्यम से वास्तविकता की खोज की जाती है. **योग व लाभ:** नियमित रुप से योग करने से शरीर के सभी अंग सुचारु रूप से कार्य करते हैं. योग से सम्पूर्ण शरीर को व्यायाम मिलता है. रोजाना योग करने वाला व्यक्ति बुरी लत और बुरी संगतों से दूर रहता है. योग की विभिन्न क्रियाएँ अलग-अलग रूप से शरीर को बाहर से सुन्दर और अन्दर से स्वस्थ करती है. मानसिक समस्याएं जैसे चिंता, तनाव व नकारात्मक विचार ये सभी योग द्वारा दूर की जा सकती है. योग शरीर को ऊर्जावान बनाने के साथ-साथ बुद्धि को बल भी प्रदान करता। योग के कई आसन ऐसे भी होते हैं, जो किसी परेशानीग्रस्त हिस्से को ठीक कर देते हैं, लेकिन ऐसे आसन आप योग विशेषज्ञ की सलाह और देखरेख में ही करें. प्राणायाम योग का ही एक अंग है जिसके द्वारा मानव शरीर के लीवर, पेट, फेफड़े, हृदय, गुर्दे आदि आन्तरिक अंगों को उपयुक्त मात्रा में ओक्सिजन मिलती है जिससे लम्बे समय तक यह अंग स्वस्थ रहते है. योग और ध्यान आपके अंतर्गत की शक्ति को सुधारता हैं. जिससे आपको यह पता चलता हैं कि क्या, कब, कहां, कैसे करना हैं. जिससे आपको सकारात्मक परिणाम मिले. सूर्य नमस्कार और कपालभाति जैसे प्राणायाम योग करने से आप शरीर के वजन को भी कम कर सकते हैं.

क्या सच में उम्र के साथ हमारी अक्ल भी बढ़ती जाती है?

उम्र के साथ अक्ल भी बढ़ती है, यह सर्वमान्य धारणा मुझे शुरू से परेशान करती आई है। आप से कोई एक-दो या दस-बीस साल बड़ा है, इस आधार पर बचपन में वह आपको पीटने का और बड़े होने पर अपने 'ज्ञान' का बोझा आप पर लादने का हकदार हो जाता है। अरे भाई, यह करने से पहले आप एक बार तो सोचें कि उम्र ने आपको बुद्धिमान बनाया है या पहले से भी ज्यादा मूर्ख बना दिया है। ज्यादातर मामलों में मैं उलटे नतीजे पर पहुंचता रहा हूं। यानी यह कि उम्र बीतने के साथ लोगों के फैसले ज्यादा गलत होते जाते हैं और अक्सर वे बेवकूफ से बेवकूफतर होते जाते हैं।

मेरे प्राइमरी स्कूल के हेडमास्टर घर से झगड़ा करके हर दूसरे-तीसरे दिन देर से स्कूल आते थे। बिना टीचर की क्लास में अगर वे हमें अपनी जगह से हिलते-डुलते देख लेते तो धमकी भरे अंदाज में पूछते, 'ईस्ट इंडिया कंपनी की स्थापना कब हुई थी', और जवाब सही या गलत होने की परवाह किए बगैर 'दुखहरन' नाम के अपने मोटे डंडे से पूरी क्लास की धुनाई करते। स्कूल के संचालन को लेकर उनकी प्रतिबद्धता पर मेरे मन में कभी कोई सवाल नहीं पैदा हुआ। एक धुर देहाती स्कूल में बच्चों को अपनी क्षमता भर पढ़ाई करने के लिए तैयार करना कोई हंसी-खेल नहीं था। लेकिन घर का गुस्सा बच्चों पर निकालना भी क्या कोई अक्लमंदी का काम था? किस-किस की बात करूं? तीस-पैंतीस के होते-होते ज्यादातर लोग सिगरेट, तंबाकू, शराब जैसा कोई नशा पकड़ लेते हैं, या जानलेवा हताशा में फंसने का कोई आकर्षक बहाना ढूंढ लेते हैं, या फिर कोल्हू के बैल की तरह आंख मूंदकर किसी के हुक्म पर चलते रहने का हुनर सीख लेते हैं। इनमें से किस चीज को आप बुद्धिमत्ता मानेंगे? चालीस पार करते-करते लोगों में कोई न कोई सनक पैदा होने के लक्षण आप साफ देख सकते हैं, जो कई बार उनका पीछा आखिरी सांस तक नहीं छोड़ती। छोटी-छोटी बातों पर लोगों से लड़ पड़ना, सालों पुराने रिश्ते पल भर में तबाह कर देना और फिर पछतावे में घुलते रहना। खुद को सबसे ऊंचा मानने की सुपीरियॉरिटी कॉम्प्लेक्स या किसी काम का न मानने की इनफीरियॉरिटी कॉम्प्लेक्स। इस सब में कहां की बुद्धिमानी है?

इस लिए उम्र का कुल हासिल मुझे मच्योरिटी जरूर लगती है, लेकिन बुद्धि-विवेक बिल्कुल नहीं। मच्योरिटी, यानी गलतियों का अंदाजा होना और उनके दोहराव से बचना। लेकिन आप अपनी खास नजर से दुनिया देख सकें, नए-ताजे काम कर सकें, इसमें न तो उम्र का कोई योगदान है, न उम्रदार लोग इसमें आपकी कोई मदद कर पाएंगे। हां, नजर धुंधली करने या फच्चर फंसाने का एक भी मौका वे अपने हाथ से बिल्कुल नहीं जाने देंगे, लिहाजा जहां तक हो सके, उम्र और अक्ल को अलग करने की कोशिश की जाए।

विवाह संस्कार

विवाह' जीवनका एक महत्त्वपूर्ण संस्कार है । धार्मिक संस्कारोंको केवल परंपरागत करनेकी अपेक्षा, उनके शास्त्रीय आधारको समझकर करना महत्त्वपूर्ण होता है । संस्कारका शास्त्रीय आधार समझनेसे उस संस्कारका महत्त्व अधिक सुस्पष्ट होता है । इस कारण वह संस्कार अधिक श्रद्धापूर्वक होता है । इस हेतु यहां विवाह संस्कारांतर्गत कुछ गिने-चुने कृत्योंका मूलभूत अध्यात्मशास्त्र प्रस्तुत करनेपर अधिक बल दिया गया है ।

तेल-हलदी लगाना

जिसका विवाह संस्कार होना है, उस संस्कार्य व्यक्तिको तेल-हलदी लगाकर स्नान करवानेकी विधिको 'तैलहरिद्रारोपणविधि' कहते हैं । धार्मिक विधिद्वारा निर्माण होनेवाली शक्ति ग्रहण करनेकी क्षमता तेल एवं हलदीके कारण बढती है । हलदीके कारण वातावरणसे पवित्रक आकर्षित होते हैं एवं तेलके कारण वे शरीरमें अधिक समयतक टिके रहते हैं । संस्कार्य व्यक्तिको हलदी लगाते समय, उसे नीचेसे ऊपरतक अर्थात तलुए, घुटने, हाथ एवं माथा, इस क्रममें लगाते हैं ।

लौकिक प्रथा

पीढेपर गेहूंका चौकोर बनाकर, वर / वधू तथा उसके माता-पिताको उसपर बिठाते हैं । फिर तीनोंके शरीरपर तेल-हलदी लगाकर सुहागन स्त्रियां उन्हें मंगल स्नान कराती हैं । प्रादेशिक भेद अनुसार वर-वधू परिवारोंके बीच हलदीका आदान-प्रदान होता है तथा इस रीतिके भिन्न नाम हैं । वधूको स्नान करवानेपर उसे हरी चूडिया देनेकी प्रथा है । हरा रंग निर्मितिका प्रतीक है, विवाहोपरांत पुत्र-कन्याके रूपमें निर्मिति हो, ऐसा उसका अर्थ है । इसे वज्रका चूडा भी कहते हैं ।

मंगलसूत्रबंधन

मंगलसूत्र को संस्कृत मेंमांगल्य तंतु भी कहते हैं । दो-सूत्री धागेमें काले मणि पिरोए जाते हैं । मध्यभागमें 4 छोटेमणि एवं 2 छोटी कटोरियां होती हैं । दो धागेअर्थात पति-पत्नी का बंधन, दो कटोरियां अर्थात पति-पत्नी एवं 4 काले मणि अर्थात धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष, ये चार पुरुषार्थ । वर पक्ष की सुहागन वर-वधूकोपूर्वाभिमुख बिठाकर, वधूको अष्टपुत्री नामक दो वस्त्र, कंचुकी (चोली) एवं कालेमणियोंका एक मंगलसूत्र दे। वर को मंगलसूत्र अपने हाथ में लेकर' हे पतिव्रते, पतिका (मेरा) जीवन दर्शक (आयुवृद्धि करनेवाला)यह मंगलसूत्र मैं तुम्हारें गलेमें बांध रहाहूं,तुम्हें सौ वर्षकी आयु प्राप्त हो ।',ऐसाकहकर इष्टदेवताका स्मरण कर वहसूत्रवधूकेकंठमेंबांधना चाहिए।विवाहकेसमय मंगलसूत्रइस तरह पहनाते हैंकि कटोरियोंका छिद्रआगे की ओर रहे ।

सप्तपदी मंत्र : शास्त्रवचन है कि, 'सात कदम साथ चलनेपर मैत्री होती है ।' इसीलिए विवाह संस्कारमें सप्तपदीका विशेष महत्त्व है । वरको वधूका हाथ पकड होमकुंडके उत्तरकी ओर रखी चावलकी सातों राशियोंपरसे उसे (वधूको) चलाते हुए ले जाना, इस कृतिको 'सप्तपदी' कहते हैं । वर-वधू एक-एक कदम रखते हैं, तब पुरोहित प्रत्येक कदमके साथ आगेके मंत्र प?ता है । उस समय वर-वधूको मनमें मंत्रानुसार संकल्प करना होता है । महत्त्व : सप्तपदी अर्थात, सप्तलोकोंसे एवं सप्तकोषोंसे एकसाथ छूटने हेतु लिए जानेवाले कदम हैं । कानूनकी दृष्टिसे समझा जाता है कि, सप्तपदी हो जानेके पश्चात ही विवाह पूर्ण हुआ ।

कंकणबंधन

सूत्रवेष्टनके सूत्रको कुमकुम लगाकर, उसे मरोडकर, उस सूत्रमें हल्दीकी गांठ एवं ऊर्णासुक (ऊनका टुकडा) बांधते हैं ।'मंत्रतंत्र हेतु बलि देकर जिसे प्रसन्न किया जाता है, ऐसी दुष्ट स्त्रीदेवता जो वधूको कष्ट देती है, सांप्रत उससे संबंध टूट चुका है । उसका वर्ण नीलरक्त हो गया है । इसके जानेसे वधूके ज्ञातिबांधव सुखवृद्धिको प्राप्त कर, पति उसके साथ बांधा जा रहा है ।', ऐसा बोलते हुए वर वह सूत्र वधूकी बाईं कलाईपर बांधे । तदुपरांत कमरका सूत्र उतारकर, उसमें भी उसी प्रकार ऊर्णासुक (ऊनका टुकडा) एवं हल्दीकी गांठ बांधकर वधूको वरके दाएं हाथकी कलाईपर यही मंत्र बोलते हुए बांधना चाहिए । कंकणबंधन उपरांत वधू पीली साडी छोड हरी साडी पहनती है । पुत्र-कन्याकी निर्मिति हो, हरा रंग इसका सूचक है।

सूत्रवेष्टन (सूत लपेटना)

वर-वधूको आमने-सामने बिठाकर कच्चा सूत दोहरा लेकर, दूधमें भिगोकर उससे वर-वधूके कंठ एवं कटि (कमर)के चारों ओर ईशान्य दिशासे आरंभ कर पांच बार लपेटें । उस समय बोले जानवाले मंत्रका अर्थ है ङ्क 'हमारे यह शब्द तुम्हें चारों ओरसे वेष्टित करें और तुम्हारी आयुवृद्धि कर निरंतर तुम्हें सौख्य प्रदान करें ।' इस प्रकार सूत्रवेष्टन हो जानेके उपरांत कंठका सूत्र नीचे जमीनपर गिरने दें और वर-वधूको खेडा कर जमीनपर गिरा हुआ सूत्र उठा लें । मानवी जीवनकी अखंडता (पूर्ण आयु) दर्शानेके लिए संस्कार एवं अन्य मंगल प्रसंगोंमें सूत्रवेष्टन करते हैं ।

द न्यादानविधि

वधूका (कन्याका) वरको दान देना, इसे कन्यादान कहते हैं । 'ब्रह्मलोककी प्राप्ति हो, इस इच्छासे अपनी सुस्वरूप एवं सुवर्णालंकारोंसे युक्त कन्याको आपको विष्णु भगवान समान मानकर देता हूं । विश्वंभर परमेश्वरको, सभी भूतों एवं देवताओंको साक्षि मान, पितरोंका उद्धार करने हेतु यह कन्या आपको देता हूं ।', ऐसा बोलें । तदुपरांत एक नवीन कांस्यपात्र (कांसेकी थाली) रखेकर, उसपर कन्याकी अंजली, उसपर वरकी अंजली और उसपर अपनी अंजली रखें । तदुपरांत कन्यादानके लिए पहलेसे ही अभिमंत्रित किए जलपात्र दाईं ओर खडी अपनी पत्नीके हाथमें दें तथा उसके हाथसे उस जलपात्रका पानी अपनी अंजलीपर बारीक धारसे सतत डालें । वह इस प्रकार कि, अपनी अंजलीका जल, कन्याकी अंजलीपर रखें वरके दाएं हाथकी अंजलीसे जल कन्याकी अंजलीसे होते हुए कांस्यपात्रमें गिरे । विवाहविधि पूर्ण हो जानेके उपरांत पत्नी पतिके बाईं ओर खडी रहती है, उसी प्रकार उसकी अंजली, पतिकी अंजलीके नीचे रहती है । 'विधिपूर्वक कन्यादान होनेके उपरांत ही पतिपत्नीका संबंध स्थापित होता है और कन्या एवं उसकी संतति उस गोत्रकी हो जाती है ।'

लाजाहोम

लाजा अर्थात् खीलें । खीलें (उसी प्रकार चावल भी) प्रफुल्लित योनिका, बहुप्रसवताका प्रतीक है । वरको प्रथम पूर्व स्थानपर आकर वधूको खडे रहनेके लिए कहना चाहिए । तदुपरांत स्वच्छ जलसे उसके दोनों हाथ अच्छी तरह धुलवाएं । तब उसे अंजुली बनानेके लिए कहकर वरको स्रुवा (आचमनी)से थोडासा घृत लेकर वधूकी अंजुलीमें डालना चाहिए अर्थात उसके हाथमें थोडासा घृत (घी) चुपडना चाहिए । वधूके भाईको या उसके स्थानपर किसी अन्य व्यक्तिको खडे रहकर सूपमें रखी खीलें (धान) मुट्ठी-मुट्ठी
लेकर दो बार कन्याकी अंजुलीमें डालनी चाहिए । (पंचप्रवरी हो तो तीन बार खीलें डालें ।) इसकेद्वारा वधूका भाई विवाहके लिए सहमति दर्शाता है । वरको सूपकी व अंजुलीकी खीलों (धान)पर अभिधार करना चाहिए अर्थात घी (घृत) डालना चाहिए ।'कन्याको अर्यमा नामक जिस अग्निदेवताकी पूजा की, वह अर्यमण इस कन्याको यहांके (पितृगृहके) पाशसे मुक्त करें; पतिके (मेरे) पाशसे न छूटने दें', ऐसा बोलते हुए अपने दोनों हाथोंसे वधूकी अंजुली पकड उसमें जो खीलें हैं, उन्हें होमकुंडमें डाले । फिर वरको सिल-बट्टा छोडकर, होमकुंड, जलकुंभ और अग्नि, इन सबकी वधूसहित प्रदक्षिणा करनी चाहिए । प्रदक्षिणा करते समय वधूका हाथ पकड स्वयं आगे चलना चाहिए तथा वधूको पीछे आना चाहिए । लौकिक प्रथानुसार इस विधिके समय वधूका भाई वरके कान खींचता है ।

हमें अपने सभ्यता और संस्कृति के विषय में पूर्ण जानकारी होनी चाहिए

आज हमारे देश में 29 राज्य हैं। एक ही देश में होने के बावजूद सभी भारतीय राज्यों और क्षेत्रों में विभिन्न धर्म, जाति, भाषा, और रंग रूप के लोग रहते हैं। ऐसा होने पर भी हर राज्य के लोग एक दूसरे के साथ मिल जुल कर रहते हैं। भारत में किसी भी राज्य का व्यक्ति अन्य किसी राज्य में जाकर आसानी से काम कर सकता है और वहां रह सकता है। परंतु रहना कोई बड़ी बात नहीं बात तो यह है कि जो प्यार के राज्य में उसे मिलता है वैसा ही अन्य राज्य के लोगों से जो उसे मिलता है। अजंता और एलोरा के साथ-साथ भारत के अन्य कई मंदिरों और गुफाओं में पाए गए हाथ से बनाए हुए चित्र, शिल्पकला और कलाएं विश्व भर में और कहीं नहीं है। भारत में कई सौ ऐसे मंदिर है जो 2000 साल से पुराने हैं और उनमें मौजूद कलाएं अद्भुत हैं। भारत में सबसे लोकप्रिय शास्त्रीय नृत्य रूप भरतनाट्यम, कथकली, कथक, मणिपुरी, ओडिसी इत्यादि हैं। भारत के लोगों की मुख्य भाषा हिन्दी है जिसे आज विश्व भर में एक मुख्य भाषा के रूप में जाना जाता है। भारत में मुख्य 17 भाषाएं बोली जाती हैं जिनका अपने राज्य और क्षेत्र के अनुसार अलग ही महत्व और मिठास है। भारतीय भाषाओं में तमिल सबसे पुरानी भाषा है और बंगाली भाषा साहित्य में समृद्ध है। भारत के सभी राज्यों में एक ही प्रकार त्यौहार मनाये जाते हैं परन्तु सबके मनाने के तरीके अलग-अलग होते हैं परन्तु सबके मन में एक ही भगवान बसते हैं। हमें अपने सभ्यता और संस्कृति के विषय में पूर्ण जानकारी रखना चाहिए और इसका प्रचार प्रसार पुरे विश्व भर में करना चाहिए। एक ऐसे महान संस्कृति वाले देश का व्यक्ति होने पर हमें गर्व होना चाहिए। हमें हमेशा अपने देश के उन्नति के लिए कार्य करना चाहिए और अपनी भारतीय संस्कृति और सभ्यता का सम्मान करना चाहिए।भा रतीय सभ्यता कई हजारों साल पुरानी है जो विश्व के हर देश से अलग है। इतिहास के अनुसार भारत ही वह देश है जहां से सभ्यता की शुरुआत। हजारों साल पहले भी हड़प्पा जैसे महान शहर और संस्कृति भारत में थे। सच माने तो भारतीय संस्कृति इतनी रहस्यमई है कि इसे आज ही सही रूप से सुलझाया नहीं जा सका है। विश्व की सबसे बड़ी पौराणिक कथाएं रामायण और महाभारत के विषय में कौन नहीं जानता है? सही में भारतीय सभ्यता अनंत है। किसी महान भारतीय सभ्यता को देखने के लिए विश्व भर से लोग प्रतिवर्ष भारत पहुंचते हैं। हम लोग इसी भारतीय सभ्यता को समझने के लिए महान कुंभ मेला से लेकर भारत के प्राचीन मंदिरों का दर्शन लेते हैं। क्या आपको नहीं लगता कि ऐसे देश में जन्म लेना हमारे लिए गर्व की बात है? भारत में बनाए जाने वाले लाखों प्रकार के व्यंजन विश्व भर में प्रसिद्ध है क्योंकि यह व्यंजन बहुत ही जायकेदार और बेहतरीन होते हैं। भारतीय खाने में कई प्रकार के मसालों का उपयोग किया जाता है जो बहुत ही चटपटे और स्वादिष्ट होते हैं। भारतीय सभ्यता सबसे पुरानी सभ्यता है जो मनुष्य के अस्तित्व के समय से मौजूद है। अगर उन वैदिक काल के समय को देखें तो ज्यादातर भारतीय व्यंजन उसी समय से आई हैं जिन्हें बाद में गुप्त साम्राज्य के समय नए तरीके से बनाया गया। बाद में मध्य एशिया और अफगान के राजाओं ने भारत पर शासन करना शुरू किया जिसके कारण भारत में मुगलई खाना लोग बनाने लगे। भारत में भोजन का नाम क्षेत्र के अनुसार लिया जाता है। जैसे हैदराबादी खाना, गुज़रती खाना, पंजाबी खाना, कश्मीरी खाना, राजस्थानी खान, आदि। भारत में कई जातियों और धर्मों का जन्म हुआ। आज इन धर्मों के लोग पूरे विश्व भर में रह रहे हैं। अगर हम देखें तो हिंदू और बौद्ध धर्म के लोग गिनती के अनुसार विश्व में तीसरे और चौथे नंबर पर आते हैं। कला के क्षेत्र में भी भारत विश्व में सबसे आगे है। इस बात में कोई संदेह नहीं है की भारतीय संस्कृति इस पृथ्वी पर सबसे अलग और बड़ी है। इसका सबसे बड़ा कारण है भारत में बसे हुए विभिन्न धर्मों, संस्कृतियों, भाषाओं,और राज्यों के लोग। हर किसी क्षेत्र का अलग रहन-सहन और अपनी नैतिकता है। विभिन्न प्रकार के लोग होने के बावजूद भारत अनेकता में एकता का सबसे बड़ा उदाहरण है। भारत के लोग 'वसुदेव कुटुंबकम' पर विश्वास रखते हैं। यानि की मिल जुलकर रहना। भले ही भाषा और रंग रूप अलग हो परंतु सभी भारतीय हैं। आज इस लेख के माध्यम से हमने भारतीय सभ्यता पर एक भाषण आपके समक्ष प्रस्तुत किया है।

।। श्री राम स्तुति।।

दोहा

श्री राम चंद्र कृपालु भजमन, हरण भाव भय दारुणम्।
नवकंज लोचन कंज मुखकर, कंज पद कन्जारुणम्।।

कंदर्प अगणित अमित छवी नव नील नीरज सुन्दरम्।
पट्पीत मानहु तडित रूचि शुचि नौमी जनक सुतावरम्।।

भजु दीन बंधु दिनेश दानव दैत्य वंश निकंदनम्।
रघुनंद आनंद कंद कौशल चंद दशरथ नन्दनम्।।

सिर मुकुट कुण्डल तिलक चारु उदारू अंग विभूषणं।
आजानु भुज शर चाप धर संग्राम जित खर-धूषणं।।

इति वदति तुलसीदास शंकर शेष मुनि मन रंजनम्।
मम ह्रदय कुंज निवास कुरु कामादी खल दल गंजनम्।।

छंद

मनु जाहिं राचेऊ मिलिहि सो बरु सहज सुंदर सावरों।
करुना निधान सुजान सिलू सनेहू जानत रावरो।।

एही भांती गौरी असीस सुनी सिय सहित हिय हरषी अली।
तुलसी भवानी पूजि पूनी पूनी मुदित मन मंदिर चली।।

सोरठा

जानि गौरी अनुकूल सिय हिय हरषु न जाइ कहि।
मंजुल मंगल मूल वाम अंग फरकन लगे।।

Printed designed by Lake City Graphics, Bhopal 9399417970, 9165329523

प्राचीन संस्कृति की माता नर्मदा

असंख्य युगों से उच्च कोटि के संत-महंत, वेदांती, संन्यासी और ईश्वर की लीला देखकर, गदगद होने वाले भक्त अपना-अपना इतिहास नर्मदा नदी के किनारे बोते आए हैं। असंख्य युगों से उच्च कोटि के संत-महंत, वेदांती, संन्यासी और ईश्वर की लीला देखकर, गदगद होने वाले भक्त अपना-अपना इतिहास नर्मदा नदी के किनारे बोते आए हैं। अपने खानदान की शान रखने वाले और प्रजा की रक्षा के लिए जान कुर्बान करने वाले क्षत्रिय वीरों ने अपने पराक्रम इस नदी के किनारे आजमाए हैं।

कई राजाओं ने अपनी राजधानी की रक्षा के लिए नर्मदा के किनारे छोटे-बड़े किले बनवाए हैं और भगवान के उपासकों ने धार्मिक कला की समृद्धि का मानो संग्रहालय तैयार करने के लिए जगह-जगह मंदिर खड़े किए हैं। हरेक मंदिर अपनी कला के द्वारा आपके मन को खींचकर अंत में अपने शिखर की अंगुली ऊपर दिखाकर अनंत आकाश में प्रकट होने वाले मेघश्याम का ध्यान करने के लिए प्रेरित करता है। जिस प्रकार अजान की आवाज सुनकर खुदा-परस्तों को नमाज का स्मरण होता है, उसी प्रकार दूर-दूर से दिखाई देने वाली मंदिरों की शिखररूपी चमकती अंगुलियां हमें स्तोत्र गाने के लिए प्रेरित करती हैं।

नर्मदा के किनारे शिवजी या विष्णु का, रामचंद्र या कृष्णचंद्र का, जगत्पति या जगदम्बा का स्तोत्र शुरू करने से पहले नर्मदाष्टक से प्रारंभ करना होता है - सबिंदुसिंधुसुस्खलत् तरंगभंग-रंजितम् इस प्रकार जब पंचचामर के लघु-गुरु अक्षर नर्मदा के प्रवाह का अनुकरण करते हैं, तब भक्त लोग मस्ती में आकर कहते हैं, हे माता! तेरे पवित्र जल का दूर से दर्शन करके ही इस संसार की समस्त बाधाएं दूर हो गई - गतं तदैव में भयं त्वदम्बु वीक्षितं यदा - और अंत में भक्ति-लीन होकर वे नमस्कार करते हैं - त्वदीय पाद-पंकजं नमामि देवि! नर्मदे!

हमें यह भूलना नहीं चाहिए कि जिस प्रकार नर्मदा हमारी और प्राचीन संस्कृति की माता है, उसी प्रकार वह हमारे भाई आदिम निवासी लोगों की भी माता है। इन लोगों ने नर्मदा के दोनों किनारों पर हजारों साल तक राज्य किया था, कई किले भी बनवाए थे और अपनी एक विशाल आरण्यक संस्कृति भी विकसित की थी। मुझे हमेशा लगता है कि हिंदुस्तान का इतिहास प्रांतों के अनुसार या राज्यों के अनुसार लिखने के बजाय यदि नदियों के अनुसार लिखा गया होता, तो उसमें प्रजा-जीवन प्रकृति के साथ ओत-प्रोत हो गया होता और हरेक प्रदेश का पुरुषार्थी वैभव नदी के उद्गम से लेकर मुख तक फैला हुआ दिखाई देता। जिस प्रकार हम सिंधु के किनारे के घोड़ों को सैंधव कहते हैं, भीमा के किनारे का पोषण पाकर पुष्ट हुए भीमथड़ी के टट्टुओं की तारीफ करते हैं, कृष्णा की घाटी के गाय-बैलों को विशेष रूप से चाहते हैं, उसी प्रकार पुराने समय में हरेक नदी के किनारे पर विकसित हुई संस्कृति अलग-अलग नामों से पहचानी जाती थी। इसमें भी नर्मदा नदी भारतीय संस्कृति के दो मुख्य विभागों की सीमा-रेखा मानी जाती थी। रेवा के उत्तर की ओर की पंचगौड़ों की विचार-प्रधान संस्कृति और रेवा के दक्षिण की ओर की द्रविड़ों की आचार-प्रधान संस्कृति मुख्य मानी जाती थी। विक्रम-संवत् का काल-मान और शालिवाहन का काल-मान-दोनों नर्मदा के किनारे सुनाई देते हैं और बदलते हैं। मैंने कहा तो सही कि नर्मदा उत्तर भारत तथा दक्षिण भारत के बीच एक रेखा

खींचने का काम करती है, किंतु उसके साथ मुकाबला करने वाली दूसरी भी एक नदी है। नर्मदा ने मध्य हिंदुस्तान से पश्चिमी किनारे तक सीमा-रेखा खींची है।

गोदावरी ने यों मानकर कि यह ठीक नहीं हुआ, पश्चिम के पहाड़ सह्याद्रि से लेकर पूर्व-सागर तक अपनी एक तिरछी रेखा खींची है। अत- उत्तर की ओर से ब्राह्मण संकल्प लेते समय कहेंगे - रेवाया- उत्तरे तीरे, और पैठण के अभिमानी हम दक्षिण के ब्राह्मण कहेंगे - गोदावर्या- दक्षिण तीरे। जिस नदी के किनारे शालिवाहन या शातवाहन राजाओं ने मिट्टी में से मानव बनाकर उनकी फौज के द्वारा यवनों को परास्त किया, उस गोदावरी को संकल्प में स्थान न मिले, यह भला कैसे हो सकता है? नर्मदा नदी की परिकम्मा, तो मैंने नहीं की है। अमरकंटक तक जाकर उसके उद्गम के दर्शन करने का मेरा संकल्प बहुत पुराना है। पिछले वर्ष विंध्य प्रदेश की राजधानी रीवां तक हम गए भी थे, किंतु अमरकंटक नहीं जा सके। नर्मदा के दर्शन तो जगह-जगह किए हैं, लेकिन उसके विशेष काव्य का अनुभव किया जबलपुर के पास भेड़ाघाट में।

भेड़ाघाट में नाव में बैठकर संगमरमर की नीली-पीली शिलाओं के बीच से अब हम जल-विहार करते हैं, तब यही मालूम होता है मानो योग-विद्या में प्रवेश करके मानव-चित्त के गूढ़ रहस्यों को हम खोल रहे हैं। इसमें भी हम जब बंदरकूद के पास पहुंचते हैं और पुराने सरदार यहां घोड़ों को इशारा करके उस पार तक कूद जाते थे। जब बातें सुनते हैं, तब मानो मध्यकाल का इतिहास फिर से सजीव हो उठता है। इस गूढ़ स्थान के इस माहात्म्य को पहचानकर ही किसी योगविद्या के उपासक के समीप की टेकरी पर चौंसठ योगिनियों का मंदिर बनाया होगा और उनके चक्र के बीच नदी पर विराजित शिव-पार्वती की स्थापना की होगी। इन योगिनियों की मूर्तियां देखकर भारतीय स्थापत्य के सामने मस्तक नत हो जाता है और ऐसी मूर्तियों को खंडित करने वालों की धर्माधता के प्रति ग्लानि पैदा होती है। मगर हमें तो खंडित मूर्तियों को देखने की आदत सदियों से पड़ी हुई है! धुआंधार प्रकृति का एक स्वतंत्र काव्य है। पानी को यदि जीवन कहें तो अध- पात के कारण खंड-खंड होने के बाद भी अनायास पूर्वरूप धारण करता है और शांति के साथ आगे बहता है, वह सचमुच जीवनतम कहा जायगा। चौमासे में जब सारा प्रदेश जलमगन् हो जाता है, तब वहां न होती है धार और न होता है उसमें से निकलनेवाला ठंडी भाप के जैसा धुंआ। चौमासे के बाद ही धुआंधार की मस्ती देख लीजिए। प्रपात की ओर टकटकी लगाकर ध्यान करना मुझे पसंद नहीं है, क्योंकि प्रपात एक नशीली वस्तु है। इस प्रपात में जब धोबीघाट पर के साबुन के पानी के जैसी आकृतियां दिखाई देती हैं और आसपास ठंडी भाप के बादल खेल खेलते हैं, तब जितना देखते हैं उतनी चित्तवृत्ति अस्वस्थ होती जाती है। यह दृश्य मन भरकर देखने के बाद वापस लौटते समय लगता है, मानो जीवन के किसी कठिन प्रसंग में से हम बाहर आए हैं और इतने अनुभव के बाद पहले के जैसे नहीं रहे हैं।

इटारसी-होशंगाबाद के समीप की नर्मदा बिल्कुल अलग ही प्रकार की है। वहां के पत्थर जमीन के तिरछे गड़े हुए हैं। किस भूकम्प के कारण इन पत्थरों के स्तर ऐसे विषम हो गए हैं।

कोई नहीं बता सकता। नर्मदा के किनारे भगवान की आकृति धारण करके बैठे हुए पाषाण भी इस विषय में कुछ नहीं बता सकते।

वही नर्मदा जब शिरोवेष्टन के साफे के समान लंबे किन्तु कम चौड़े भड़ौंस के किनारे को धो डालती है और अंकलेश्वर के खालिसयों को खिलाती है, तब वह बिल्कुल निराली ही मालूम होती है।

कबीरबड़ के पास अपनी गोद में एक टापू की परवरिश करने का आनंद एक बार मिला, वह सागर-संगम के समय भी इसी तरह के एक या अनेक टापू-बच्चों की परवरिश करें, तो इसमें आश्चर्य ही क्या है?कबीरबड़ हिंदुस्तान के अनेक आश्चर्यो में से एक है। लाखों लोग जिसकी छाया में बैठ सकते हैं और बड़ी-बड़ी फौजें जिसकी छाया में पड़ाव डाल सकती है, ऐसा एक वटवृक्ष नर्मदा के प्रवाह के बीचोंबीच एक टापू में पुराण-पुरुष की तरह अनंत काल की प्रतीक्षा कर रहा है।

जब बाढ़ आती है, तब उसमें टापू का एकाध हिस्सा बह जाता है, और उसके साथ इस वट-वृक्ष की अनेक शाखाएं तथा उन पर से लटकनेवाली जड़ें भी बह जाती हैं। अब तक कबीरबड़ के ऐसे बंटवारे कितनी बार हुए, इतिहास के पास इसकी सूची नहीं है। नदी बहती जाती है, और बड़ की नई-नई पत्तियां फूटती जाती हैं। सनातन काल वृद्ध भी है और बालक भी है। वह त्रिकालज्ञानी भी है और विस्मरणशील भी है।

इस काल-भगवान का और कालातीत परमात्मा का अखंड ध्यान करनेवाले ऋषि-मुनि और संत महात्मा जिसके किनारे युग-युग से बसते आए हैं, वह आर्य-अनार्य सबकी माता नर्मदा भूत, भविष्य, वर्तमान के मानवों का कल्याण करें। जय नर्मदा, तेरी जय हो। (गांधीवादी चिंतक कालेलकर ने यह आलेख अगस्त, 1955 में लिखा था। सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली से प्रकाशित उनकी पुस्तक सप्त सरिता से साभार)

स्वामी, मुद्रक, प्रकाशक अरुण पटेल द्वारा प्रियंका ऑफसेट, 25, ए कॉम्पलेक्स एम.पी.नगर जोन-1, भोपाल से मुद्रित कर ई-100/41, शिवाजी नगर भोपाल म.प्र. 462016, से प्रकाशित। संपादक : अरुण पटेल
फोन न. 0755-255432, मो.9425010804, ईमेल : raghukalash@gmail.com
सभी विवादों का न्यायक्षेत्र भोपाल रहेगा।(RNI.NO.MPHIN/07269